Fortnightly per copy Rs. 4/- only

ओ३म्

18th March 2019

आर्य जीवन
ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प
హిందీ - తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month

सभी तरह की हिंसा के खिलाफ़ रोम में विश्व सम्मेलन सम्पन्न

रोम (इटली) में स्थित वेटिकन परिसर में विश्व के समस्त संप्रदायों के धर्माचार्यों का तथा संयुक्त राष्ट्र संघ से संबन्धित व अन्य दिग्गज़ विद्वानों का महासम्मेलन वैश्विक समस्याओं के समाधान हेतु विचारार्थ सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में व्यवस्थागत हिंसा, भ्रष्टाचार, अंधविश्वास, पाखण्ड व पर्यावरण जैसी समस्याओं पर बेबाक तरीके से बोलते हुए स्वामी अग्निवेश जी। उसी का एक अंश बाजु में दिया गया है। इस अवसर पर सार्वदेशिक सभा के महामंत्री प्रो. विट्ठलराव आर्य जी पोप फ्रांसिस से मिले। इस अवसर पर उन्हें वेद का सेट भेंट किया गया।

The root cause of religious exclusivism, which generates an attitude of hostility towards other faiths is the polarization between the priestly and the prophetic elements in religion.

-Swami Agnivesh, Social Worker

जग को जगाने वाला - आर्य समाज है

-भद्रसेन

तो कुछ आर्य नाम से प्रसिद्ध हैं। भारतीयों की भावनाओं का ध्यान रखते हे शुरू में लड़कियों के स्कूल आर्य समाज मन्दिरों में खोले गए। अब पंचानवें प्रतिशत स्वतन्त्र रूप से चल रहे हैं। ऐसे ही पहले सह शिक्षा से बचने के लिए लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग शिक्षण संस्थान बने। अब स्कूलों की तो बात ही क्या ? कॉलेज भी कुछ सह शिक्षा के चल निकले हैं।

किसी को जगाने, ऊँचा उठाने का दूसरा साधन है - सही राह बताना।चाहे आज ज्ञान-विज्ञान का कितना ही प्रसार हो रहा है, पर आए दिन स्वार्थवश अनेक जनता को अन्धविश्वास, रूढ़ियों में उलझाने, भटकाने में लगे हुए हैं। तभी तो आए दिन जादू-टोने, बलि देकर मनोवांछित फल साधने की चाहना से ठगी की घटनायें घट रही हैं। जिससे भुक्तभोगी अपने आपको ठगा गया, उलझा हुआ, भटका हुआ बाद में अनुभव करते हैं। ठगी के ऐसी घटनायें रोज समाचार पत्रों और दूरदर्शन के चैनलों पर आ रही हैं।

हम अपने चारों ओर आज भी देख रहे हैं कि कहीं आपस में छुआ-छूत, ऊँच-नीच का भेद भरा सामाजिक, धार्मिक, जातीय व्यवहार किया जाता है। कहीं शकुन-अपशकुन के मुहूर्त का विचार और अनिष्ट ग्रह के योग का डर पैदा करके अपनी दुकान चलाई जा रही है। इन भुलावों, उलझावों, डरावनाओं में सही राह बताने के लिए १८७५ से ही महर्षि दयानन्द के निर्देश के अनुसार नगर-नगर में आर्य समाज की स्थापना करने का यत्न हो रहा है। आज पाँच हज़ार से अधिक आर्य समाज द्वारा संचालित संस्थाएँ हैं। जो जनता में समाजसुधार की लहर चलाकर और समय-समय पर प्रचार करके ईश्वर, धर्म, योग का सुसंगत रूप बताने में जुटी हुई हैं। जिससे जनता निरर्थक पत्तों को पानी न देकर जड़ को सींचे।

राष्ट्रभाषा हिन्दी - मानव समूह को सामाजिकता में पिरोने वाला पहला सूत्र है - भाषा। जिससे बोलकर अपने भाव एक-दूसरे से सांझा करते हैं। कम से कम दो हज़ार वर्षों से अनेक भाषायें, बोलियाँ बोली जा रही हैं। हाँ, भारत की भाषाओं में पचास प्रतिशत से भी अधिक तत्सम, तदभव शब्द संस्कृत के एक से हैं, भारतीय भाषाओं की वाक्य बनाने की प्रक्रिया जहाँ एक सी है, वहाँ कथ्य वस्तु एक जैसी ही है। संस्कृत से जुड़ी हिन्दी सारे भारत में समझी और बर्ती जाती है। अतः हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में सारे भारतीयों को एक सूत्र में जोड़ने में हर तरह से सक्षम है।

इसीलिए महर्षि दयानन्द ने १८७३ से हिन्दी को ही अपने प्रचार का साधन बनाया। इसको आगे बढ़ाते हे आर्य समाज ने हिन्दी भाषा के विकास, प्रचार में भरपूर सहयोग दिया। अपने स्कूलों, कॉलेजों, गुरुकुलों में हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था की। तभी तो जहाँ-जहाँ आर्य समाज पहुँचा, फैला वहाँ-वहाँ हिन्दी और उसके साथ राष्ट्रीय भावना, समाज सुधार की लहर सब जगह फैली। हिन्दी भाषा के सभी इतिहासकारों ने इस बात को स्वीकार किया है।

स्वाधीनता संग्राम यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि स्वाधीनता संग्राम में आर्य समाज ने बढ़-चढ़कर कार्य किया है। भारतीय कांग्रेस से दस साल से दस साल पहले ही आर्य समाज की स्थापना १८७५ में हो गई थी। वैसे तो इसके संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द ने अपने गुरु ब्रह्मर्षि विरजानन्द जी दण्डी की प्रेरणा पर १८६३ के उत्तरार्ध से ही जन-जागर का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इसीलिए भारत के भूतपूर्व केन्द्रीय गृहमन्त्री कैलाशनाथ काटजू ने कहा था-'स्वामी दयानन्द ने सर्वप्रथम भारत की स्वतन्त्रता का बीजारोपण किया।' इस सारी स्थितियों का सिंहावलोकन करते हुए कन्हैया लाल माणिक लाल मुन्शी से लिखा है - 'भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित होने के बाद दयानन्द सरस्वती के साथ राष्ट्रीयता की पहली मंजिल का उदय हुआ। १८५७ के राष्ट्रीय विद्रोह की असफलता में निहित अपमान से परितप्त जनता में उन्होंने ही सर्वप्रथम राष्ट्रीयता का विकास किया। वास्तव में उनके प्रयत्नों ने हिन्दूधर्म के पुनरुद्धार का रूप ग्रहण किया और इसी कार्य में वे नई राष्ट्रीय भावनायें भी सहायक हुई, जो यूरोप में प्रबल होती जा रही थीं। दयानन्द की प्रेरणा से धर्म राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हो गया।

इसीलिए भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है - 'स्वामी दयानन्द की सबसे बड़ी विशेषता उनकी दूरदर्शिता थी। यह देखकर आश्चर्य होता है कि विदेशी शासन के विरोध में सक्रिय संघर्ष के समय जिन बातों पर महात्मा गाँधी ने अधिक बल दिया और उन्हें रचनात्मक कार्य की संज्ञा दी। प्रायः वे सभी काम स्वामी दयानन्द के कार्यक्रम में ५० वर्ष पूर्व शामिल थे।'

भारतीय भाषाओं की वाक्य बनाने की प्रक्रिया जहाँ एक सी है, देशभर के लिए एक सामान्य भाषा की आवश्यकता। इसके अतिरिक्त अछूतोद्धार, स्त्रीशिक्षा, स्वदेशी का प्रयोग।

अतः बड़े गौरव के साथ कहा जा सकता है कि अपने आरम्भ काल से ही और आज भी आर्य समाज जग को जगाने, ऊँचा उठाने का कार्य कर रहा है।

य आत्मदा बलदा

'य आत्मदा बलदा' मंत्र पर चिन्तन-स्वाध्याय के लिए पाठक

इस मंत्र का पूर्ण पाठ देखें-

'य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥' यजु. २५-१३

मंत्र के स्वाध्याय-चिन्तन के लिए इसे निम्न रूप से विभक्त कर लेते हैं -

१) यः (परमात्मा) आत्मदा=जो परमेश्वर आत्मज्ञान के दाता हैं ।

२) (यः परमात्मा) बलदा=जो परमेश्वर शरीर आत्मा और समाज के बल के देने वाले हैं ।

३) यस्य प्रशिषं विश्वेदेवाः उपासते=जिस परमेश्वर के प्रत्यक्ष सत्य-स्वरूप शासन न्याय अर्थात् शिक्षा को विद्वान् लोग मानते हैं, जिसकी विद्वान् देव पुरुष उपासना करते हैं ।

चिन्तन रमणीयती की दृष्टि से-जो परमेश्वरकी उपासना करते हैं, और जो परमेश्वर के न्याय-शिक्षा पर चलते हैं, वे देव, दिव्य गुण विशिष्ट हो जाते हैं ।

४) यस्य छाया अमृतम्=जिसका आश्रय मोक्ष सुखदायक है ।

५) यस्य (अ-छाया) मृत्युः=जिसका न मानना, भक्ति न करना, मृत्यु आदि दुःख का हेतु है ।

६) कस्मै देवाय हविषा विधेम=सुख स्वरूप, सकलज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से उसकी भक्ति करे अर्थात् उसी की आज्ञा का पालन करने में सदा तत्पर रहें ।

अब इन खण्डों पर पृथक् - पृथक् थोड़ा चिन्तन प्रस्तुत करते हैं -

१) **य आत्मदा** - परमेश्वर हमें आत्मज्ञान देते हैं, अतः वे आत्मदा हैं ।

आत्मज्ञानं ददाति, तस्माद् आत्मदा । आत्मा तो हम स्वयं हैं, अतः कोई हमें आत्मा का दान करे, यह तो ऊटपटाँग जैसा है । हाँ, हम आत्मा के भूले रहते हैं, हमें अपना भी ज्ञान नहीं होता कि हम कौन हैं । परम प्रभु हमें आत्म अनुभूति कराते हैं, आत्मज्ञान देने वाले हैं । अतः हमारे आत्मदा प्रभु परमेश्वर हैं ।

हम क्या हैं, कौन हैं ? यह चिरन्तन प्रश्न है, बड़ा अद्भुत प्रश्न है ।

हम क्या हैं ? इस प्रश्न का उत्तर नास्तिक, आस्तिक अपने-अपने ढग से देते हैं । चार्वाक हों था डार्विन, मार्क्स हों या कोई अन्य भौतिकतावादी, सभी की धारणा है कि हम मिट्टी हैं, मिट्टी के ढेले हैं, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि का संयोग हो गया और हम बन गये । हालावादी युग के उच्छृंखल युवक खूब लहरा-लहरा कर गाते, मटकते, निरुद्देश्य से चहल कदमी करते -

'माटी का तन, माटी का मन ।
क्षण भर जीवन, मेरा परचय ॥'

भाव यह है कि हम शराब की मिट्टी की प्याली की तरह हैं । आदर्श,आद्यात्मिकता, आत्मोत्थान, सब मिथ्या, घपला मात्र है । खाओ, पीओ, मौज करो-'Eat, drink and be merry' इतना ही जीवन का तत्व, सार, निचोड़ है । बाकी सब व्यर्थ हैं ।

भौतिकवादी आत्मा को ही नहीं मानते तो उनके लिए आत्मज्ञान का प्रश्न ही नहीं उठता

स्वामी शंकराचार्य जीव को ब्रह्म 'अहं ब्रह्मास्मि' बताते हैं । गोस्वाम तुलसीदास जी उसी लाइन पर चलकर 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' के गीत गाते हैं । कई पौराणिक मान्यता के लोग प्रातः उठते ही जपते हैं-

'पापोऽहं पापकर्माऽहं, पापात्मा पाप सम्भवः।'

अर्थात्मैं पापी हूँ, पाप कर्म करने वाला हूँ । मैं पापात्मा हूँ और मैं पाप से पैदा हुआ हूँ

ईसाई सिद्धान्तों की सीधी ही घोषणा है- 'We are born sinners' हम सब जन्म से ही, पैदाइशी पापी हैं ।

इन सवके विपरीत प्रस्तुत मंत्र में परमेश्वर को 'आत्मदा' आत्मज्ञान का दाता कहा गया है । वेदमंत्रों में सैकड़ों प्रसंगों पर परमेश्वर जीव का स्वरूप, उसके गुणधर्म, प्रकृति-प्रवृत्ति आदि का उपदेश देते हैं । एक दो मंत्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं ।

'वायुरनिलममृतमथेदं, भस्मान्तं शरीरम् ।'
यजु. ४०-१५

भाव यह है कि हमारा शरीर नश्वर, 'भस्मान्त' अन्त में भस्म बन जाने वाला है और हमारा आत्मा अमृत, न मरने वाला, अमर है ।

२) **दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।**
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥
यजु. १९-७७

भाव यह है कि प्रजापति परमेश्वर ने संसार में सत्य और अनृत रूपों को देखकर जीवात्मा को यह प्रवृत्ति प्रदान कर दी कि आत्मा को सत्य में श्रद्धा और अनृत में अश्रद्धा स्वतः होने लगती है ।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने युगान्तरकारी ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में जीवात्मा के संबंध में लिखा है-

'मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है

सैकड़ों संहिता मंत्रों को आधार मानकर उपनिषद् और दर्शन शास्त्र के ऋषियों ने आत्मा के गुणधर्म प्रकृति का बड़ा विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है । मूलतः आत्मदा परमेश्वर ने जो आत्मज्ञन वेदों में दिया है, ऋषियों ने उसी वेद में वर्णित आत्मज्ञान को उपनिषदों और दर्शनों में पल्लवित किया है ।

२) **(यः परमात्मा) बलदा** - बलं ददाति इति बलदा । परमेश्वर हमें, सत्य को, आदर्श को, बल देते हैं । अतः प्रभु को बलदा कहा गया है । स्वामी दयानन्द जी ने बलदा की व्याख्या में 'शरीर' आत्मा और समाज के बल का देने हारा, ऐसा लिखा है । इसका अर्थ हुआ कि बल चाहे शारीरिक हो या आत्मिक या फिर सामाजिक, सभी प्रकार के बलों का उद्गम, आदि स्त्रोत परमेश्वर ही हैं । प्रत्येक प्रकार के बल पर थोड़ा-थोड़ा चिन्तन करते हैं

शारीरिक बल - 'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्' हमारा शरीर हमारे धर्म पालन का आदि-प्रथम साधन है । निर्बलता पाप है । शरीर की अवमानना भर्त्सना करने वाले सन्त भी हुए हैं । उन्होंने कहा- 'यह तन विष की बेलरी ।' किन्तु वास्तविकता यही है कि हमारा शरीर हमारे धर्म का, हमारे कर्म का सबसे प्रथम साधन है । शरीर से निर्बल या अस्वस्थ व्यक्ति धर्म, कर्म सबके लिए असमर्थ है । अतः शरीर बलवान् होना चाहिए ।

अब अगला प्रश्न है कि बल आता कहां से है । सामान्यतः यह धारणा है कि शरीर का बल भौतिक है । किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि बल केवल भौतिक नहीं है । शरीर बल में भौतिकता के साथ मानसिकता भी जुड़ी हैं

शरीरबल = भौतिकबल + मानसिक बल

(Physical force+Psychological Force= Body Power).

शरीर बल के लिए उचित आहार, विहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य, शंयम, नियम, व्यायाम, परिश्रम अनेक कारण है । 'त्रयोऽस्कन्धाः शरीरस्य

भोजनं निद्रा ब्रह्मचर्यमिति ।' हमारा भोजन विश्राम और संयम सदाचार शरीरबल पैदा करता है । थोड़ा गम्भीरता से चिन्तन करें- गाय का घी-दूध, भैंस का घी-दूध, बकरी का घी-दूध, इनका प्रोटीन, मसूर, मूंगफली, पेशावरी बादम, सोयाबीन, सबका प्रोटीन एक ही नहीं है । महीना बीस दिन नियमित जीवन, संयत सोना, जागना, दश पन्द्रह दिनों का ब्रह्मचर्य पालन शरीर में परिवर्तन लाने लगता है । श्वास को भरकर, प्राणों को साधकर हम किसी काममें बल लगाते हैं । शारीरिक बल और प्राणों का संबंध, शारीरिक बल और मानसिकता, उत्साह, आदि का संबंध मनुष्यकृत नहीं है । यह सब बलदा प्रभु की ही व्यवस्था है । प्रभु ने हमारे शरीर को 'देवानां पूरयोध्या' अजेय देवपुरी अयोध्या बनाया है । हम प्रभु प्रदत्त नियमों का पालन करें और परमप्रभु हमें स्वास्थ्य और बल देते हैं । वास्तविक बलदा तो परमेश्वर ही हैं, शेष घी दूध बादाम मेवे आदि तो तब हमें बल प्रदान करते हैं, जब हम प्रभु के नियम, अनुशासन, व्यवस्था के अनुकूल जीवन यापन करते हैं । सो प्रभु शारीरिक बलदा हैं ।

आत्मा का बल - आत्माका बल प्रभु भक्ति, प्रभु का भरोसा, सत्यनिष्ठा, अपने आदर्शों के प्रति सत्यनिष्ठा से आता है । छलिया, स्वार्थी, क्रूर के पास आत्मबल नहीं होता । शूर और क्रूर दो शब्दों पर ध्यान दीजिए । शेर शूर नहीं होता, वह क्रूर होता है । शेर बकरी परहमला करता है । बकरी निर्बल है । शेर आग की लपट देखते ही दुम दबा कर भाग जाता है । क्रूर का कोई आदर्श नहीं, शूर का आदर्श उसकी सत्य की निष्ठा है-

"था सव जगत विरोधी, फिर भी ऋषि दयानन्द, वैदिक धरम का झण्डा, पहरा गया अकेला । यह मत कहो कि जग में कर सकता क्या अकेला ।।"

आत्मा का वल शरीर के बल से, तोप तलवार से, राज दरवार से, सबसे अधिक बड़ा बल है ।

स्वामी दयानन्द जी अनेको बार अंग्रेज शासकों से, उच्च अधिकार सम्पन्न राजपुरुषों से, देशी राजेमहाराजाों से, उच्च पदस्थ पादरी मौलवी पण्डितों से, निर्द्वन्द्व भिड़ जाते थे । यह उनका आत्मबल ही था । बरेली में जिला अधिकारी, बड़े पादरी के सामने ऋषि ने जो घन गर्जन किया, यह उनका आत्मबल ही था, इसी ने तो मुंशीराम को आदर्शों की ओर आकृष्ट किया था ।

आत्मबल का स्त्रोत प्रभु भक्ति और प्रभु के न्याय और व्यवस्था पर विश्वास है । शरीर का बल, हाथ-पैर-मांसपेशियों का बल, शरीर से अधिक मन और बुद्धि में बसता है । शरीर, मन-बुद्धि आदि के बल का उद्गम आत्मबल में है और आत्मबल प्रभुभक्ति और प्रभु विश्वास से मिलता है । अतः सम्पूर्ण चिन्तन का निष्कर्ष यह है कि आत्मबल के दाता प्रभु परमेश्वर स्वयं हैं ।

समाज का बल - समाज का संगठन निर्बल है या सबल ? समाज की रीढ़ की हड्डी है या नहीं ? समाज निर्जीव है या सजीव; पाणवान्, बलवान् तेजस्वी है या नहीं ? निर्जीव, मुर्दा, निष्प्राण में गति नहीं होती, प्रतिरोध, प्रतिकार की न क्षमता होती है, न भावना । मुर्दा पड़ा है, गीध, चील, कोवे नोंच नोच कर खाते हैं । मुर्दे में गति नहीं, छटपटाना-तड़पना कुछ भी नहीं, प्रतिरोध, प्रतिकार, प्रतिशोध की तो कोई बात नहीं । आखिरकार मुर्दा ही है, क्या प्रतिरोध, क्या प्रतिशोध ?

स्वामी दयानन्द और आर्य समाज से पूर्व भारत वर्ष में हिन्दू समाज पर निर्जीव के सारे लक्षण सटीक ठीक बैठते रहे । हिन्दू समाज के अंग प्रत्यंग को कहीं से मुसलमान नोच रहे थे, तो कहीं से ईसाई नोच रहे थे । हिन्दू समाज मुर्दों की तरह शान्त निष्क्रिय पड़ा था । स्वामी जी ने झकझोरा, आर्य समाज के प्रचारकों कने ललकारा -

"हुए करोड़ों अपने भाई, गोभक्षक मुस्लिम ईसाई, इनको आन बचाओं ! ऐ आर्य वीरगण आओ !!"

हिन्दू छटपटाये, तिलमिलाये, आर्य समाज को बुरा भला कहा, गालिया भीखूब दीं । हिन्दू समाज में प्राणों का संचार हुआ, तव जीवन आया, नव जागरण आया । जाति के लुटेरे ईसाई, मुसलमानों को आर्य विद्वानों प्रचारकों ने ललकारा, शास्त्रार्थ किये ।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी एक कविता में बड़े प्यार से लिखा है (स्मृति क आधार पर)-

"ऐ मेरे प्रिय आर्य समाज !
घर में घुस आये थे चोर,
तुमने शोर मचाया घोर ।
कुछतो टूटा तन्द्रिल ज्वर,
हम सब जाग पड़े सत्वर ।।'

आर्य समाज हिन्दू समाज का खड् गधर प्रहरी सिद्ध हुआ । समाज का बल सामाजिक लक्ष्य, आदर्श पर निर्भर करता है । उच्च आदर्श हों, उच्च चरित्र, उच्च विचार, उच्च आदर्श, समाज को बल देते हैं । स्वार्थ, विलास, आराम तलबी, आदर्शहीनता निर्बल बनाते हैं । आदर्श और चरित्र के आदि स्त्रोत प्रभु हैं । प्रभु ही समाजबल के दाता हैं ।

बल चाहे शारीरिक हो या आत्मिक, या फिर सामाजिक, सबमें अपेक्षित नियम, कर्म, कर्म की विधि है । ये सब मनुष्य के बनाये हुए नहीं, परमात्मा के बनाये हुए हैं । समाज का बल संगठन के आदर्श, अनुशासन, पारस्परिक प्रेम, स्नेह, त्याग आदि पर निर्भर करता है । आरम्भिक वर्षों में आर्यों के आदर्शो- अनुशासन, पारस्परिक स्नेह पर संसार के लोग-संगठन आश्चर्य करते और स्पृहा से देखते थे । संगठन में दल थे, सदस्यों की संख्या बढ़ने से विचार पार्थक्य, कार्यशैली का पार्थक्य सहज है । किन्तु नीचता और चालाकी, चाण्डाल चौकड़ी न थी । आज मन मसोसता है । क्या यह वही संगठन है ? मन खिन्न हो जाता है ! छोड़िए, आइए, मन्त्र पर चिन्त करें

३) **यस्य प्रशिषं विश्वे देवाः** उपासते- परमेश्वरका शासन प्रत्यक्ष, सत्यस्वरूप है । शासन करने का अर्थ व्यवस्था करना है, केवल दण्ड देना नहीं । जो प्रभु की व्यवस्था में रहते हैं, उनके शासन को मानते हैं, उनके नियमों का पालन करते हैं, वे देव बन जाता हैं, उनमें दिव्य गुणों का समावेश हो जाता है

सोने-जागने, संयम-सदाचार-ब्रह्मचर्य, पारिवारिक और सामाजिक सभी प्रकार के अनुशासन प्रभु ने दिये हैं, और इनके सुफल- कुफल हमारे सामने प्रत्यक्ष हैं । संयमी सदाचारी व्यक्ति स्वस्थसुखी रहता है । असंयमी व्यक्ति रोगों क्लेशों का केन्द्र बन जाता है ।

प्रभु की उपासना का अर्थ है प्रभु के समीपस्थ होना । हम अग्नि के समीपस्थ होते हैं तो हमें अग्नि का गुण उष्णता प्राप्त होती है । जल के समीप बैठने से जल का गुण शीतलता प्राप्त होती है । परमात्मा के समीपस्थ होने पर, परमात्मा की उपासना करने पर प्रभु के गुण हमें प्राप्त होते हैं । उपासना के संबंध में स्वामी जी ने निम्न प्रकार लिखा है -

'जैसे ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हैं, वैसे अपने करना । ईश्वर सर्वव्यापक और अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर हैं, ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना 'उपासना' कहाती है । इसका फल ज्ञान की उत्पत्ति आदि है ।' (स्व मन्त्वयामन्तव्य प्रकाश में) ।

परमेश्वर तो देवों के देव महादेव हैं । उनके गुण-कर्म-स्वभाव महान् हैं । उन गुणों,

उन कर्मों का किञ्चित मात्र भी जब हमारे सौभाग्य का अंश बन जाता है तोहम उन दिव्य गुणों और दिव्य कर्मों के कारण दिव्य बनकर देव बन जाते हैं । इस प्रकार बात उभयथा समीचीन लगती है ।

१) जो देव, बुद्धि के विद्वान् लोग हैं वे परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव की उपासना करते हैं । उन गुणों कर्मों का स्मरण-कीर्तन-चिन्तन आदि करते रहने से वे गुण कर्म स्वभाव हमें अच्छे रुचिकर लगते हैं । वे हमारे जीवन के अंग बनने लगते हैं और हमारे जीवन में देवतत्त्व, दिव्य गुण आने लगते हैं ।

श्रीमद् भगवद् गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं
'सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।।'
गीता १७-३

अर्थात् - जिसमें जैसा सत्व होता है, उसी प्रकार की उसकी श्रद्धा होती है । मनुष्य श्रद्धामय है, श्रद्धा का ही बना है । जिसमें जैसी श्रद्धा होती है, वह व्यक्ति भी उसी प्रकार का होता है । अगला श्लोक बात को और सुस्पष्ट कर देता है-

'यजन्ते सात्विका देवान्, यक्ष रक्षांसि राजसाः ।
तान् भूतगणांश्चान्ये, यजन्ते तामसा जनाः ।।'
गीता १७-४ अर्थात्-सात्त्विक स्वभाव वाले देवों की पूजा करते हैं, राजसी लोग यक्षराक्षसों को पूजते हैं औरतामसी लोग भूत प्रेतों की पूजा करते हैं । २) इसी का दूसरा पहलू है कि जो परमेश्वर की उपासना करते है, वे देव बन जाते हैं । प्रभु के उपासकों भक्तों की श्रद्धा सात्विक होती है और वे प्रभु की उपासना करते करते दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर स्वयं देव बन जाते हैं ।

यहीं एक तत्तव पर ध्यान दे लेते हैं । आत्म उत्थान करने के इच्छुक व्यक्ति को किसी तामसी, राजसी काम, या व्यक्ति की कभी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए और न उनके कामों का अनुकरण करना चाहिए । पाकेटमार ने वड़ी बुद्धिमानी सफाई से जेव काटी, चोर ने होशियारी से सेंध लगाई, चाण्डाल चौकड़ी के माहिर, बेईमान धुरन्धर ने चुनाव जीत लिया । इनकी बड़ाई करने से, इनका आदर सम्मान करने से पाप के वीज हृदय में जमा सुरक्षित हो जाते हैं और अनुकूल मौका पाकर वे पाप के बीज साधक का पतन करने में सहयोगी हो उठते हैं । इसीलिए मनुजी लिखते हैं -

'पाषण्डिनो विकर्मस्थान्, वैडालवृत्तिकान् शठान् ।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च, वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ।।'
मनु. ४-२०

आदर, सम्मान, प्रशंसा, सत्कार नहीं करना चाहिए -

१) पाखण्ड करने वाले धूर्त, २) कुत्सित काम करने वाले कदाचारी, ३) बिडाल वृत्ति, छिपकर घात करने वाले, ४) शठ, हठी, अभिमानी, बनतू, ५) कुतर्की, बकवादी, ६) बगुला भगत-ऊपर से शान्त, भीतर से घात लगाने वाले ।

इन, दुष्टों से बचकर प्रभु का गुण-कीर्तन-उपासना से साधक देव बन जाते हैं ।

४) **यस्य छाया अमृतम्** - जिस परमेश्वर की छाया, जिस जगदीश्वर का आश्रय, सहारा अमृत है, कभी नष्ट होने वाला नहीं है । मनुष्य अपनी मानसिकता, बौद्धिकता, आध्यात्मिकता आदि की दृष्टि से जितना भी श्रेष्ठ प्राणी हो किन्तु अपनी आवश्यक ताओं की दृष्टि से सम्भवतः संसार के सभी प्राणियों से अधिक पराश्रयी है । दूसरे प्राणी तो थोड़ा सहारा लेते हैं, अन्यथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वे स्वयं अपने आप कर लेते हैं । किन्तु मनुष्य अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, सभी कार्यों के लिए सबसे अधिक दूसरों पर आश्रित रहता है । माता-पिता, भाई-भाई, संबंधी, समाज, राष्ट्र सबका सहारा मनुष्य को मिलता है । किन्तु ये सभी सहारे, सहयोग, आश्रय क्षण भंगुर हैं, नश्वर हैं । स्थायी सहारा तो परमेश्वरका ही होता है ।

प्रभु का सहारा क्या है ? हमारे शरीर के यन्त्र, मस्तिष्क का जटिल कार्य पाचन संस्थान, रक्त संचार, श्वास तन्त्र आदि भौतिक स्थूल संयन्त्रों के साथ कर्मेन्द्रिय-ज्ञानेन्द्रिय का समन्वय-सामंजस्य, प्राण-मन-बुद्धि को अचेतन शरीर और चेतन आत्मा के मध्यसम्पर्क सेतु बनाकर सम्पूर्ण जीवन संयन्त्र को सञ्चालित करना, यह प्रभु की ही महिमा है । जो सोचता है, समझता है, इनकी बारीकियों पर चिन्तन करता है, यह आश्चर्यचकित रह जाता है -

'आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनम् ।
आश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः ।।'
गीता-२-२९

जीवन का चालू रहना एक सहारा है । एक और सहारा भी है जो कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है । प्रभु ने हमारे लिए कुछ नियम बनाये हैं । हम इन नियमों पर चलते हैं तो आनन्द में रहते हैं, अपनी जीवन यात्रा में सफल होते हैं, हम जीवन में उन्नति करते हैं । इन नियमों व्यवस्थाओं के हमने विभिन्न नाम दे रखे हैं । कभी हम इन्हें धर्म कहते हैं, कभी ऋताचार, सदाचार, सत्याचरण आदि अनेक नाम देते हैं । ये ही सही में चिरस्थायी आश्रय हैं । एक सूक्ति पर विचार कीजिए-

'धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, भार्या गृहद्वारि जनाः श्मशाने । देहश्चितायां परलोकमार्गे, धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ।।'

इस अर्थ प्रधान युग में मनुष्य का विश्वास सबसे अधिक धन-दौलत के सहारे पर है । जब जीव अपनी परलोक की, अनन्त की यात्रा पर निकलता है तो उसकी धन-सम्पत्ति इसी संसार में जमीन, बैंक, शेयर, बाण्ड, लाकर, तिजोरी आदि में धरी रह जाती है । हाथी, घोड़े, पशु आदि अपनी जगह बंधे रह जाते हैं ।जीवन साथी पत्नी घर में और हितमित्र साथी सव अधिक से अधिक श्मशान तक साथ दे पाते हैं । उससे आगे केवल एक धर्म ही साथ जाता है । यही परम सहारा है । यह धर्म का सहारा प्रभु का आश्रय है । यह आश्रय अमृत हैं-अमर है । यस्य छाया अमृतम् । इस संसार में, इस जीवन में हम बीमा कराते हैं, बीमा की रकम अदा करते हैं । प्रभु के यहां धर्म का बीमा करा सकते हैं । यह प्रभु की व्यवस्था में अमर-अमृत आश्रय है ।

५) **यस्य (अ-छाया) मृत्यु :-** जिस परमेश्वर की छाया से वंचित रहना, अर्थात् जिसके आश्रय से पृथक हो जाना मृत्यु आदि दुःख का कारण है । श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ किया है, जिसका न मानना, अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है ।

भक्ति करने का क्या अर्थ है ? भक्ति और भजन दोनों का एक ही धातु है । भज् + क्तिन् = भक्ति, भज् + ल्युट् = भजन । दोनों ही भाव अर्थ में है । भज धातु का अर्थ सेवा करना है । सो भजन और भक्ति दोनों का एक ही अर्थ हुआ है- 'सेवा करना ।' सामानय भाषा में भजन करना तो गुण कीर्तन करना है और भक्तिकरना सेवा करना है । मातृभक्त,गुरुभक्त, या माता-पिता की भक्ति या गुरु की भक्ति का यही अर्थ लिया जाता है कि व्यक्ति भक्ति करता है अर्थात् माता-पिता गुरु की सेवा करता है, उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखता है । इस प्रकार भक्ति करने के निम्न अर्थ वन जा रहे हैं -

भक्ति- १) सेवा करना, सुख सुविधा खाने पीने, आराम विश्राम का ख्याल रखना । पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति के अनुसार अपनी शक्ति भरसेवा में जुटे रहना

भक्ति- २) भजन कीर्तन करना, नाम

जपना आदि । माता फेरना आदि इसी में है ।

भक्ति- ३) आज्ञा पालन करना, आदेश निर्देश आदि मानना ।

भक्ति- ४) आदेशों निर्देशों के अनुसार अपने जीवन को व्यतीत करना आदि ।

शरीरधारी व्यक्ति के लिए तो खिलाना पिलाना शारीरिक सुख पहंचाना सम्भव है । भक्त के लिए यह आवश्यक भी है । किन्तु प्रभु परमेश्वर तो निराकार हैं, उन्हें तो खिलाना पिलाना, चन्दन माला आदि तो हो नहीं सकता ? अतः प्रभु की अर्चना तो उनके आदेशो - उपदेशों को मानने और उन पर आचरण करने से ही सम्भव है ।

श्रीकृष्ण की व्याख्या - इस बात को श्रीकृष्ण ने भगवद् गीता में बहुत सुन्दर रीति से समझाया है । श्रीकृष्ण शरीरधारी महापुरुष महान् आत्मा थे । शरीर वाले को भोजन चाहिए ही । श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं-

'पत्रं पुष्पं कलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहमश्नामि प्रयतात्मनः ।।'

गीता ९-२६

अर्थात् - जिस प्रभु परमेश्वर की कृपा से मनुष्य क्या, भूत मात्र सूर्य-चन्द्र, नदीसमुद्र, अग्नि-जल-पवन, मनुष्य, पशु-पक्षी सभी अपने अपने कामों में प्रवृत्त होते हैं, उस परमेश्वर की अर्चना अपने कर्मों से करके मनुष्य अपने जीवन की सिद्धि प्राप्त करता है । परमेश्वर की पूजा अर्चना का उपकरण-सामग्री मनुष्य का अपना आचरण ही है ।

जीवन आचरण भी कैसा हो ? हर-हर महादेव शम्भो, बोलकर गांजा-भांग का सेवन, देवी को अर्पित करके मदिरा पान, अर्चना नहीं, पाप है । यह पाप प्रवृत्ति को छिपाने का पाप पूर्ण आडम्वर है ।

स्वामी दयानन्द जी ने संस्कार विधि के ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना प्रकरण में इस मंत्र का अर्थ लिखते हुए लिखा है-

१) जिसका सब विद्वान् लोग प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं ।

२) उसकी भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञापालन करने में (आत्मा और अन्तःकरण से) तत्पर रहें ।

व्यक्ति का अपना-अपना वर्ण है और अपना-अपना आश्रम है । जो जहां भी जीवन यापन में जिस क्षेत्र में भी रहे, जितना स्वार्थ से ऊपर होकर प्रभु के और प्रभु की प्रजा संसार के लिए अर्पित हो जायेगा, उतना ही उसकी भक्ति का स्वरूप निखर उठेगा ।

आदर्श और आज्ञापालन ही भक्ति है - वास्तविक भक्ति आदर्श और आदेश-उपदेश पालन में है । एक स्वदेश भक्त माता-पिता का पुत्र अपने माता-पिता की खूब सेवा कता है । नहलाना, खिलाना, वस्त्र-विस्तरा, सुख-सुविधा का भरपूर ख्याल रखखता है । सेवा की दृष्टि से अति भक्त है । माता-पिता के लिए स्वदेशी खादी खरीदता है किन्तु स्वयं अपने लिए सारे सामान विदेशी । शराव भी पीता है, मास भी खाता है, उल्टा-पल्टा आना-जाना, जीवन में न सत्य न ईमान, केवल रुपया में लगा रहता है । ऐसे ही मित्र, घर पर भी ऐसी ही पार्टियां, अण्डे, मुर्गे, शराब, जुआ सब कुछ घर में ही चलता है । बूढ़ें असमर्थ माता-पिता देखते हैं, उन्हीं के घर में उन्हीं के सामने उनके आदर्शों, विचारों, आचरणों की हत्या उन्हीं के पुत्र के हाथों हो रही है । केवल रोटी कपड़ा देकर तो पितृ भक्त नहीं हो सकता । पुत्र को अपने आचरण-कर्म भी तो ठीक करने होंगे । यही बात प्रभु भक्त पर और भी जोर से लगती है । माता-पिता को तो रोटी-कपड़े की शारीरिक आवश्यकता है । परमेश्वर को तो वह भी नहीं चाहिए । उन्हें न शरीर है और न 'पत्रं पुष्पं फलम् तोयम्' की आवश्यकता है । प्रभु की अर्चना तो स्वकर्म, स्ववृत्त, स्वजीवन, स्वआचरण से हीहोती है । तभी तो श्रीकृष्ण कहते है-

'स्व कर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः'

अपने कर्मों से प्रभुकी अर्चना सिद्ध होती है ।

५-कस्मै देवाय हविषा विधेम्-'हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे' मंत्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में कुछ विस्तार से विचार किया है कि 'कस्मै देवाय' का अर्थ 'सुखस्वरूपाय परमात्मने' है ।

कः सुखः (निरु. १०-२२) और कः वै प्रजापतिः (ऐत. ३-२१) ये प्रमाण भी दिये हैं

वहां 'हविषा' का अर्थ महर्षि ने 'ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास' और 'अति प्रेम' किया है । यहां महर्षि ने हविषा का अर्थ 'आत्मा और अन्तःकरण' किया है । भक्ति का अर्थ प्रभु की आज्ञापालन में तत्पर रहना किया है

न्या, शासन, आदेश, आज्ञा पालन पर हम कुछ विचार कर चुके हैं ।

प्रभु भक्ति रूपी यज्ञ की हवि, सामग्री होतव्य द्रव्य 'आत्मा और अन्तःकरण' को बनाना प्रभु भक्ति है ।

आत्मा-अन्तःकरण प्रभु के आदेश निर्देश का अनुभव करने लगें और उसे ही जीवन में धार लें तभी सुख स्वरूप के स्वरूप में आस्था होगी । प्रभु भक्ति होगी ।

य बलदा आत्मदा

इस मंत्र का भाष्य और हिन्दी में अर्थ 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में श्री स्वामी जी महाराज ने निम्नप्रकार किया है -

'भाष्यम् - (य आत्मदाः) य आत्मदा विद्याविज्ञान प्रदः, (बलदाः) यः शरीरेन्द्रिय प्रामात्ममनसां पुष्टयुत्साह पराक्रम दृढ़त्व प्रदः (यस्य.) यं विंश्वेदेवाः सर्वे विद्वान्स उपासते यस्यानुशासनं च मन्यन्ते, (यस्य छाया.) यस्याश्रय एव मोक्षोऽस्ति, यस्याच्छाया कृपाऽश्रयो मृत्युर्जन्ममरण कारकोऽस्ति, (कस्मै.) तस्मै कस्मै प्रजापतये 'प्रजापतर्वे कस्मतस्मै हविषा विधेम' इति शत. (का. ७-३ ब्रा. १-२०) सुखस्वरूपाय ब्रह्मणे देवाय प्रेमभक्तिरूपेण हविषा वयं विधेम्,सततं तस्यैवोपासनं कुर्वीमहि

'जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देनेवाला है, जो सब विद्या और सत्य सुखों की प्राप्ति कराने वाला हैं, जो शरीर इन्द्रिय प्राण आत्मा और मन की पुष्टि, उत्साह, पराक्रम और दृढ़ता का देने वाला है, जिसकी उपासना सब विद्वान् लोग करते आये हैं, और जिसका अनुशासन जो वेदोक्त शिक्षा है, उसको अत्यन्त मान्य से सब शिष्ट लोग स्वीकार करते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष सुख का कारण है, और जिसकी अकृपा ही जन्ममरण रूप दुःखों को देने वाली है । अर्थात्-ईश्वर और उसको उपदेश-जे सत्य विद्या, सत्य धर्म और सत्य मोक्ष है- उनको नहीं मानना, और जो वेद से विरुद्ध होके अपनी कपोल-कल्पना अर्थात् दुष्ट इच्छा से बुरे कामों में वर्तता है, उस पर ईश्वर की अकृपा होती है, वही सब दुःखों का कारण है, और जिसकी आज्ञापालन ही सब सुखों का मूल है, जो सुख स्वरूप और सब प्रजा का पति है, उस परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिए सत्य प्रेम, भक्तिरूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें । जिससे हमलोगों को किसी प्रकार का दुःख कभी न हो ।'

-प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

क्या संस्कृत मातृभाषा है ?

-पं. गोकुलचन्द्र दीक्षित

इस समय वहुत-से मनुष्य यह विचार कर रहे हैं कि किसी समय में संस्कृत भाषा भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा थी, इसलिए वेद ईश्वरीय ज्ञान न होकर उन लोगों के रचे हुए हैं जो संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे, परन्तु स्वामी दयानन्द ने अपनी प्रभावशाली वक्तृता एवं लेखों से इस वात को सिद्ध किया है कि संस्कृत कभी भी जनसाधारण की भाषा नहीं हुई, वरन् यह देववाणी अर्थात् विद्वानों की भाषा थी। इसी कारण संस्कृतभाषा में ईश्वर का वेदोपदेश करना किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है। यावत् कोई भाषा किसी देशविशेष की भाषा न मान ली जाए, तावत् वह मातृभाषा कहलाने के योग्य नहीं हो सकती, अतः स्वामी दयानन्द की सम्मति में तो संस्कृत मातृभाषा नहीं। सृष्टि के आदि से हीसंस्कृत तथा प्रापकृत दो भाषाएँ चली आती हैं। वहुत-से मनुष्यों के मन में यह विचार होगा कि जिस समय आदिसृष्टि में ऋषियों को वेदों का ज्ञान दिया गया, उसके पश्चात् यौगिक संस्कृत और प्राकृत भाषा किस प्रकार बन गई ? इसका उत्तर यह है कि वेदों की भाषा में रूढ़ि शब्द नहीं है, वरन् समस्त शब्द यौगिक ही हैं। रूढ़ि उसे कहते हैं कि वेदों की भाषा में रूढ़ि शब्द नहीं है, वरन् समस्त शब्द यौगिक ही हैं। रूढ़ि उसे कहते है कि उस शब्द की धातु से यह अर्थ निकालना चाहें तो न निकल सके, जैसे किसी कङ्गाल को 'धनपति' कहा जाए तो यह रूढ़ि नाम होगा, परन्तु यदि प्रत्येक धनी को 'धनपति' कहा जाए अर्थात् जो वास्तविक अर्थ है वही लिया जाए तो यौगिक होगा, और यदि किसी धनीविशेष का नाम 'धनपति' रक्खा जो तो यह योगरूढ़ि होगा।

वेदों में सव नाम यौगिक हैं। रूढ़ि नाम नये पदार्थों के वनने पर रक्खे गये। जव मनुष्य बनी, उसका नाम प्राकृत था। आशय यह कि वैदिक संस्कृत तो वह भाषा है जो सर्वदा एकसी रहती है, कभी कोई अन्तर ही नहीं पड़ता और न ही संसार-चक्र का उसपर कोई प्रभाव पड़ता है। वैदिक संस्कृत इस जगत् में सर्वज्ञ ईश्वर ने ऋषियों को पढ़ाई, परन्तु यौगिक संस्कृत में तो प्रथम कल्प में ही अन्तर पड़ना सम्भव है, क्योंकि उसमें जो मिलावट होती है तो किसी नियत नियम पर नहीं, और प्राकृत जो देश,काल और वस्तुओं के कारण भिन्न होती है उसमें तो भिन्नता होती ही है।

सृष्टि के आदि से ही तीन प्रकार की भाषा होती हैं-एक वैदिक अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान का भण्डार, दूसरी यौगिक संस्कृत अर्थात् देववाणी, और तीसरी प्राकृत मातृभाषा। जो मनुष्य संस्कृत की मातृभाषा है ही नहीं। जव वर्त्तमान समय में किसी भी देश की भाषा संस्कृत नहीं तो मातृभाषा किस प्रकार हो सकती है ? आर्यवर्त्त के तो प्रत्येक भाग की भिन्न-भिन्न मातृभाषा हैं। पञ्जाव में पञ्जाबी, पोठोहारी, डेरावाल, डोगरी, कश्मीरी एवं पहाड़ी आदि भाषाएँ मातृभाषाहैं। सिन्ध की सिन्धी एक पृथक् ही भाषा है। संयुक्त प्रदेश में हिन्दी, व्रजभाषा तथा उर्दू, गढ़वाल में पहाड़ी, विहार में बिहारी, बङ्गाल में बङ्गाली, उड़ीसा में उड़िया, नेपाल में नेपाली, मारवाड़ में मारवाड़ी, गुजरात में गुजराती, दक्षिण में तेलुगू, तमिल, कन्नड और महाराष्ट्र में मराठी आदि। थोड़े-थोड़े अन्तर में प्राकृत भाषा की सैकड़ों ही शाखाएँ दिखाई देती हैं, परन्तु संस्कृत अब भी देववाणी अर्थात् विद्वानों की भाषा है, जिसे योग्य पण्डित ही बोल सकते हैं। इसी कारण स्वामी दयानन्द ने भी अपने सत्यार्थप्रकाश में वेद के विषय में लिखते हुए ऐसा लिखा है -

प्रश्न- किसी देशभाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों लिखा ?

स्वामीजी का उत्तर- यदि किसी देशभाषा में प्रकाश करे तो ईश्वर पक्षपाती होता, क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाशित करता उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने-पढ़ाने में होती। इसलिए संस्कृत ही में प्रकाश किया जोकि किसी देशकी भाषा नहीं। और न ही यह किसी और विद्वान् के विचार में किसी देश की भाषा हो सकती है, परन्तु आर्यसिद्धान्तों से अनभिज्ञ और यह न समझनेवाले कि हमारा ये शब्द अन्य स्थान पर आर्यसिद्धान्त को कितनी हानि पहुँचाएँगे। युक्त प्रदेश की प्रतिनिधि सवा के सभ्यों के विचारों में संस्कृत मातृभाषा है जैसाकि उन्होंने गुरुकुल की योजना में पृष्ठ ८ से लेकर पृष्ठ १० तक लिखा है। (हाय !) प्रतिनिधि सभा की योजना और उसमें आर्यसिद्धानत एवं स्वामी दयानन्द के विरुद्ध यह सम्मति !

अव प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या इनके हृदय में स्वामीजी का आदर नहीं अथवा ये आर्यसिद्धान्त को नहीं जानते ? हम नहीं कह सकते कि इनके हृदय में स्वामीजी का आदर नहीं, क्योंकि इस योजना के दूसरे ही पृष्ठ पर लिखा है-

समर्पणम्

श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती, संस्थापक आर्य समाज तथा अपने समय के एकमात्र वेदवेत्ता को, जिन्होंने कि गुरुकुल-प्रणाली पुनर्जीवित करने का भाव उत्पन्न किया।

प्रतिनिधि सवा के सभासदों के ये शब्द प्रकट करते हैं कि उनके हृदय में स्वामी का आदर है, परन्तु उनकी अनभिज्ञता का प्रमाण भी इन्हीं शब्दों से मिल जाता है, क्योंकि स्वामीजी को समर्पण करना क्या वही अर्थ नहीं रखता जो एक हिन्दू का अपने मृतक पितृ के लिए जल और भोजन समर्पण करना रखता है ? क्या करें ! वेचारों ने पञ्जाब गुरुकुल की योजना से बहुत-कुछ लिखा उससे सारी योग्यता प्रकट हो गई। किसी ने सत्य कहा है कि 'कौआ चला हंस की चाल, अपनी भी भूल गया !' क्या यह शोक का स्थान नहीं है कि एक प्रान्त के समाजों के प्रतिनिधियों की सभा और यह

योग्यता और फिर इसपर गुरुकुल खोलने का पागलपन ! यदि अंग्रेजी स्कूल खोलना होता तो हमारे बी.ए. महात्मा अतवा अन्य एम.ए. और एफ.ए. मिलकर चला भी लेते, परन्तु यह तो वह मार्ग है जिससे प्रतिनिधि की अन्तरङ्ग सभा में एक भी मनुष्य परिचित नहीं । ऐसी अवस्था में समस्त संसार के विरोध होने पर भी सफलता प्राप्त होगी, यह विचार सेखचिल्ली के विचारों से अधिक महत्व नहीं रखता । जिस प्रकार डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर से गौतम, कणाद और कपिल उत्पन्न होने की आशा में मनुष्यों ने वर्षों लगाये, परन्तु परिणाम क्या हुआ ? वह आर्य समाजों पर भी प्रकट हो गया । जो प्रतिज्ञाएं अब की जाती हैं वे उस समय नहीं थीं । वास्तविक वात यह है कि जिस प्रकार के साँचे में वर्तन ढाले जाते हैं, उसी प्रकार के बर्तन होते हैं, अर्थात् जिस प्रकार के प्रवन्धकर्त्ता और गुरु होंगे वैसे ही शिष्य बनेंगे । प्रबन्धकर्त्ताओं की योग्यता की बानगी तो सर्वसाधारण देख ही चुके हैं ।

"शिक्षा मनुष्य की शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की याथातथ्य परिपक्वता है ।" तनिक किसी विद्वान् से जाकर पूछिए कि शिक्षा परिपक्वता है अथवा यह शिक्षा का फल है ? कहिए, जिन्हें फल और स्वरूप के लक्षण का भी ज्ञान न हो उन्हें क्या कहा जाए ? अस्तु, भारत का दुर्भाग्य अभी शेष है । वैदिक धर्म की उन्नति से भारत का दुर्भाग्य रह नहीं सकता, परन्तु वैदिक धर्म काप्रचार ऐसे हाथों में चला गया जो सिवाय अपने नाम से अपना गौरव बढ़ाने के अपने गुण-कर्म से कुछ भी नहीं कर सकते । वे आर्यसिद्धान्त के प्रचार का बीड़ा उठाकर अपने अज्ञान से उसका नाश कर रहे हैं । जिस प्रकार कोई मनुष्य पञ्जाव प्रदेश में चला जाए और वहाँ किसी के घर सगाई के अवसर पर जाने का संयोग हो और उस समय किसी की वाणी से ये शब्द निकलें कि 'शीघ्र प्रवन्ध करो, राजा साहव आते हैं', तो उसके हृदय में अवश्य ही गृहस्वामी के प्रति आदर उत्पन्न हो जाएगा, क्योंकि किसी कङ्गाल के यहाँ तो राजा साहव जाते नहीं, परन्तु जिस समय राजा साहव, अर्थात् नाई क्योंकि पञ्जाव में नाई को राजा कहते हैं, आ जाएगा तो उसका वह भाव पूर्ण रूप से लुप्त हो जाएगा । इसी प्रकार आर्य प्रतिनिधि सभा का नाम सुनकर तो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में उसके लिए आदर उत्पन्न होता है, परन्तु जिस समय कोई मनुष्य उसके काम पर विचार करेगा तथा उसके सदस्यों की योग्यता पर दृष्टिपात करेगा तो उसका वह भाव समूल नष्ट हो जाएगा । आज तक प्रतिनिधि सभा ने जितने काम आरम्भ किये सबमें असफलता मिली । यद्यपि इस प्रान्त के मनुष्य अधिक धनी हैं, परन्तु प्रवन्ध उत्तम न होने के कारण किसी काम को उत्साह से करने की शक्ति ही नहीं । यद्यपि अधिकारी इस बात का दोष भी क्या करें, क्योंकि उनकी योग्यता से अधिक ार अनपर डाल दिया जाता है । समाज इसमें भी निर्दोष है, क्योंकि नेताओं ने नियम ही ऐसे बनाये हैं । यद्यपि गवर्नमेण्ट का प्रबन्ध ऐसा उत्तम है कि प्रान्त में एक छोटा लाट-उपराज्यपाल और उसके सहकार कौंसिल के मैम्वर और सेक्रेटरी आदि, फिर उनके नीचे कमिश्नर, कलैक्ट्र, डिप्टीकलैक्टर, तहसीलदार, नायव-सहायक तहसीलदार, कानूँगो, नायब कानूँगो और पटवारी । अब पटवारी काम करता हुआ क्रमशः डिप्टी कलैक्टर हो सकता है तथा कलैक्टर क्रमशः छोटा लाट हो सकता है- परन्तु इसमें भी भूल हो जाती है, परन्तु जहाँ गाँव के पटवारी अथवा नायब तहसीलदार को एकसाथ छोटा लाट बना दिया जाए, वहाँ की क्या दशा होगी ? जो सभ्य आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रधान हो वह धार्मिक दृष्टि से मानो प्रन्तभर की आर्य समाजों का छोटा लाट है, परन्तु उससे नीचे यदि कोई पद है तो केवल स्थानिक आर्य समाज का प्रधान-पद, जिसका अर्थ गाँव का पटवारी समझ लीजिए, क्योंकि नायब तहसीलदार आदि का अधिपत्य तो गाँव से वाहर भी होता है । जिस मनुष्य को गाँव के बाहर का तनिक भी ज्ञान न हो, उसे यदि छोटा लाट बना दिया जाए तो उसका प्रबन्ध कैसा होगा तथा उसका अनुभव कितना होगा-यह आर्य लोग स्वयं विचार कर सकते हैं । क्या वर्तमान अवस्था में कोई योग्य-से-योग्य पुरुष ऐसा प्रवन्ध कर सकता है कि जिससे किसी को कुछ कहने की आवश्यकता ही न रहे ? कभी नहीं । सैकड़ों समाजें बनकर टूट गईं, पचासों मृत्युशैय्या पर पड़ी हुई हैं, परन्तु प्रतिनिधि सवा के अधिकारी बहुत कम जानते हैं कि समाजों की क्या दसा है । सबसे वड़ा दोप आर्य प्रतिनिधि सवा के सम्वन्ध में यह है कि यहाँ भेड़ और भैंस एक ही भाव में विकती हैं, अर्थात् 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' वाली कहावत इसपर चरितार्थ होती है । यदि कोई दो व्याख्यान संस्कृत के याद कर ले, अष्टाध्यायी के सूत्र भी याद हों और दो-चार सास्त्रार्थ के पुस्तक भी रट ले, फिर तो प्रतिनिधि सभा के अधिकारी उसे षट्शास्त्री ही मान लें । ऐसी घटनाएँ बहुधा हो चुकी हैं । संस्कृत को मातृभाषा कहना यद्यपि स्पष्टतया ईश्वरीय ज्ञान वेद में पक्षपात को दोषारोपण करना है, परन्तु जो मनुष्य अज्ञानी हैं उनके लिए क्या किया जाए !

हमारे बहुत-से मित्र यह कहेंगे कि गुरुकुल की योजना में मातृभाषा से तात्पर्य भाषाओं की माता है, परन्तु यह अर्थ उस प्रकरण से नहीं निकलता, क्योंकि यदि संस्कृत को भाषाओं की माता मानकर उसकी आवश्यकता बताई जाती तो उसका उदाहरण समस्त संसार में एक-सा मिलता, परन्तु इस समय कहीं भी संस्कृत प्रधान भाषा नहीं है, अतः केवल भारतवर्ष का उदाहरण देना स्पष्टरूप से इस वात को बताता है कि संस्कृत हमारे देश की मातृभाषा है जोकि हर प्रकार से असत्य तथा आर्यसिद्धान्त के प्रतिकूल है । आर्य प्रतिनिधि सभा गुरुकुल की स्कीम-योजना वनाए और फिर भी आर्यसिद्धान्त की जड़ पर कुठाराघात करे ! शोक तो यह है कि आर्य जनता इस योजना को पढ़े, परन्तु इस प्रकार की मोटी अशुद्धि को भी न जान सके । यदि किसी को वैदिक धर्म से प्रेम होता तो वह वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने में दोष आता देखकर ध्यान देता । यदि किसी को स्वामी दयानन्द के आदर का विचार होता तो उनके वाक्यों को झूठा होता देखकर शोक प्रकट करता, परन्तु यहाँ तो बात ही दूसरी है । सारी पुस्तकों में मिलावट हो गई है । संस्कृत के स्थान पर भाषा पचासों स्थानों पर छप गई, क्या

शेष पृ. २० पर...

आर्यो ! आओ मूल को समझें

-भद्रसेन

आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती ने १८७५ में की थी । आर्य समाज एक प्रचारात्मक संगठन है । अतः प्रचार के लिए वह दैनिक साप्राहिक सत्संग वार्षिक त्सव, वेद-सप्ताह, विविध पर्वों का आयोजन तथा केन्द्रीय और प्रान्तीय स्तर पर भिन्न-भिन्न समयों में आर्य महासम्मेलन करता रहता है । ऐसी स्थिति में एक स्वाभाविक सी जिज्ञासा होती है, कि आर्य समाज की विचारधारा की मूल भाववना, मूलमन्तव्य, केन्द्रबिन्धु क्या है ? जिसका कि आर्य समाज प्रचार-प्रसार करना चाहता है । इस दृष्टि से जब हम गहरे पानी पैठते हैं, तो हमारे सामने स्पष्ट होता है, कि यह सारा स्वारस्य इसके नाम में निहित है ।

यह एक स्वाभाविक सी बात है, कि हर समझदार जब भी, जो भी, जैसा कुछ करना चाहता है । वह अपने हित की भावना से या अपने भले की दृष्टि से ही करता है । इसीलिए वेद के रचयिता प्रभु ने वेद पढ़ने वालों को और इस संसार में प्रगति की चाहना वालों को आर्य शब्द से यत्र-तत्र पुकारा है ।

आर्यों ! यह आर्य शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । आर्य शब्द केवल हमारा सामूहिक नाम ही नहीं, अपितु हमारे अर्थात् हर एक के लक्ष्य, उसकी सिद्धि की प्रक्रिया, तड़प, भावना, चाहना का भी निर्देश करता है । इसी एक शब्द में ही 'गागर में सागर' की तरह सब कुछ समाया हुआ है । हाँ, यह ध्यान रहे यह सब तभी चरितार्थ होगा, जब इसके साथ समाज अर्थात् इसकी सामाजिक भावना को भी सम्पृक्त रखेंगे, क्योकि मनुष्य विधारशील सामाजिक प्राणी है । उसका जहाँ जन्म तथा जीवन समाज पर निर्भर है, वहाँ वह समाज में ही आशा, उत्साह, प्रसन्नता, सुख, शान्ति अनुभव करता है । हाँ, द्वि तीयाद्वै भयं भवति, अर्थात् अपरिचित से भय अनुभव होता है, वहाँ व्यक्ति अकेले में भी भय अनुभव करता है ।

शब्दार्थ - ध्यान रहे वेद में आया हुआ यह आर्य शब्द आज की तरह आर्य समाजियों के लिए रूढ़ नही है, क्योंकि वेद के समय तो आर्य समाज था ही नहीं । अर्थात् आर्य समाज का सदस्य होना या आर्य समाज से जुड़ा हुआ होना यह आज कल का अर्थ है । जैसे कि आजकल आर्य समाज से जुड़े संगठनों के नाम में यह शब्द मिलता है, यथा- आर्य स्कूल, आर्य कालेज आदि ।

वेद की दृष्टि से आर्य शब्द यौगिक है, किसी भी प्रकार से रूढ़ नहीं है । तभी तो संस्कृत, हिन्दी भाषा के सभी कोशों में आर्य शब्द = श्रेष्ठ, भले, अच्छे अर्थ में ही आया है । हाँ, गहराई से समझने के लिए जब हम इस शब्द पर विचार करते हैं, तो स्पष्ट होता है कि आर्य जहाँ ऋधातु से बनता है, वहाँ आर्य का भी तद्धित रूप है ।

ऋधातु - आर्य की ऋ (गतौ) धातु गति के अर्थ में है और **गतेस्त्रयोर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च** । व्यावाहारिक रूप से प्रथम किसी का ज्ञान, पुनः ज्ञान के अनुरूप क्रिया अर्थात सिद्धि की प्रक्रिया का अनुष्ठान, तब फल की प्राप्ति । मूलतः यह सब क्रियाशीलता का परिणाम होता है । क्योंकि क्रियाशील ही सारी सिद्धियों, सफलताओं को प्राप्त करता है । क्रियाशील, आलसी, खाली (काली मन शैतान का घर), सुविधा का भोगी नहीं होता । आज सुविधाओं की लालसा के कारण ही जीवन स्तर (स्टैण्डर्ड) उठ रहा है । इस को प्राप्त करने और फिर इस को उठाने या बनाये रखने के लिए धन की दौड़ शुरू हो जाती है । जिसका कहीं अन्त, सीमा नहीं । यह आगे से आगे बढ़ती जाती है । हाँ, वेद में जीव को क्रतु (ओ३म क्रमो स्मर यजु. ४०, १५) नाम से भी पुकारा गया है । जिससे क्रियाशीलता की ओर संकेत जाता है । क्रतु-ज्ञान और कर्म दोनों अर्थ में है ।

अर्थ - अर्य का तद्धित रूप भी आर्य है तथा 'अर्य स्वामि-वैश्ययोः' पाणि, ३,१,१०३ से प्रमाणित होता है, कि अर्य शब्द स्वामी (=किसी का मालिक) और वैश्य (= व्यापार, उद्योग आदि अर्थ, धन प्राप्ति के कारोबार करने वाला, वर्ण विशेष) के अर्थ प्रचलित है । अतः स्वामी का पुत्र, स्वामिपन का प्रसार, भाव जिसमें है । यह संसार रूपी सारी रचना, नियन्त्रण जिस का है, मूलतः वही स्वामी है । अतः हम सवका स्वामी, मालिक, सर्वे सर्वा ईश्वर ही है । तभी तो निरूक्तकार ने लिखा है- 'आर्य ईश्वरपुत्रः' निरू. ६,२६ अर्थात् अर्य=ईश्वर और उस का पुत्र ही आर्य है । सारे प्राणियों में से जाने स्रष्टा पिता की सम्पत्ति, विरासत को संभालने के योग्य, सक्षम मानव ही है । तभी तो महाभारतकार ने कहा है- न हिमानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित् शान्ति पर्व २८८, २० सभी प्राणियों में से एक मानव ही अपने पिता की इच्छा, चाहना, हृदय भावना को पूर्णतः समझने, उसको पूर्ण कर सकने में सक्षम है । तबी तो अपने चारों ओर हम देखते हैं, कि आज मानव ने अपने सामर्थ्य यत्र-तत्र-सर्वत्र चरितार्थ किया हुआ है । इसी सामर्थ्य के कारण ही वेद इस प्रकार के वाक्यों से घोषित करता है, कि 'अहं भूमिमददामार्याय' ऋग् ४,२६,२ अर्थात् मैं (परमेश्वर) आर्य (धर्मयुक्त गुण०कर्म-स्वभाव वाले समार्थ्य सम्पन्न व्यक्ति को भूमि उत्पादि हर प्रकार के ऐश्वर्य) को देता हूँ । अतः तुम सदा ऐसे रहते हु इसका संवर्धन, संरक्षण करो । यहाँ भूमि शब्द भूमि सदृश उत्पादन के मूलस्रोत, कच्चे माल का वाचक है । जिस से दूसरों का उत्पादन, विकास होता है । जैसे भूमि सभी भूमिजों का मूल, जड़ है । ऐसी वह-वह सम्पदा देता हूँ । भूमि के महत्त्व को स्पष्ट करने के लिए ही उसके वसुन्धरा, वसुधा, रत्नगर्भा आदि पयार्य *(निरूक्त में २१ नाम आए हैं- **गौः, ग्मा, ज्मा, क्षमा, क्षा, क्षमा, क्षोणी,***

क्षितिः, अवर्निः, उर्बी, पृथ्वी, मही, रिपः, अदितिः, झटा, निर्ऋतिः, भूः, भूमिः, पूषा, गातुः, गोत्र) हैं ।

प्रत्येक पिता अपने योग्य पुत्र को ही अपनी हर प्रकार की सम्पत्ति, विरासत, सर्वस्व सौंपता है । अयोग्य को प्राप्त हुई सम्पदा कभी भी अपने पिता की इच्छा को सिरे नहीं चढ़ाती । अयोग्य बढ़ाने की तो बात ही क्या उतना भी रखने में समर्थ नहीं होता । प्रायः देखा जाता है, कि अयोग्य हर तरह से उजाड़ ही बैठता है । यह वात हम सब अपने चारों ओर हर कारोबार में देख रहे हैं, कि ये बिगड़े हुए, लाडले कहीं परस्पर लड़कर या नशे में डूब कर या बुरी संगत में पड़कर जो कुछ कर रहे हैं, वह किसी से छिपा हुआ नहीं है । अनेक पुत्र अज्ञान, अन्धविश्वास दुराग्रह में ग्रस्त होकर या दुर्व्यसनों में पड़ कर पिता की सम्पत्ति को समाप्त कर देते हैं । यह बात सूर्य के प्रकाशकी तरह सर्वत्र प्रकट हो रही है ।

वेद के दूसरे शब्दों के समान आर्य शब्द भी प्रकृति-प्रत्यय के मेल से बनता है । अतः आर्य शब्द अपने यौगिकपन के कारण अपनी योग्यता, सुपात्रता का निर्देश करता है । आर्य की योग्यता, सुपात्रता को ध्यान में रखकर ही वेद अनेक स्थलों पर उसको सर्वस्व सौंपने का विधान करता है । वेद के आधर पर ही सारे भारतीय साहित्य में भी आर्य की गुणवत्ता को ध्यान में रखकर उसका भरपूर प्रयोग किया है ।

आर्य शब्द अपने धात्वर्थ, यौगिकपन के कारण जहाँ अपनी गुणवत्ता को चरितार्थ करता है, वहाँ यह सभी स्वीकार करते हैं, कि वेद में आर्य का विपरीतार्थक शब्द दस्यु है । दस्यु का चित्रण करते हे वेद में आया है- अकर्मा दस्यु अभि नो अमन्तु अन्यव्रतो अमानुषः ऋ. १०, २२, ८ न+कर्मा-अकर्मा=निकम्मा, जो कर्मशील न हो, आलसी हो, अपने कर्तव्य कर्म का पालन नहीं करता या उलटे कर्म करता है । न+मन्तु-अमन्तु= जो विचार शून्य, अज्ञानी, मूर्ख, विचारने में असमर्थ अविवेकी अर्थात जो विना विचारे कर्म करता है या विपरीत विचार, ज्ञान वाला है । अन्यव्रत - समाजिक व्रतों, नियमों से विपरित, भिन्न, अन्य जिसका व्रत, व्यवहार है । अर्थात् समाज के नियमों का पालन न करने वाला, वे-असूला ।

अमानुष - न+मानुष अर्थात् मानव के सहानुभूति, सहिष्णुता, सच्चरित्रता, उदारता, विवेकशीलता, आत्मीयता, सहयोग, असयोग, प्रेम, न्याय, सत्य, अहिंसा आदि गुणों से जो रहित है, वह अमानुष दस्यु कहलाता है । इससे विपरीत जो कर्मशील, सत्पथगामी, मननशील, सामाजिक नियम पालक, संस्कृत, सम्य और सच्चा मानव है, वही आर्य कहलाता है । अतः वेद में आए आर्य और दस्यु शब्द जातिवाचक नहीं हैं, अपितु गुणवाचक+दोषबोधक हैं, अन्यथा विशेषण देकर इस प्रकार इन का वर्णन न होता । निःसन्देह लोक में दस्यु शब्द डाकू के अर्थ में रूढ़ है और उस पर भी ये विशेषण लागू होते हैं । हाँ, वह जानबूझ कर, स्वार्थवश ऐसा करता है । अपने कार्य में वह विचारशील, समाज होता है, पर मनुष्यता, नैतिकता के प्रति आँखे मूंद लेता है ।

आर्य ईश्वरपुत्र :-

हम सब ईश्वर के मानने वाले ईश्वरको इस संसार का बनाने वाला के रूप में मानते हैं । ईश्वर का यह रूप, गुण ही हमारे लिए प्रत्यक्ष, स्पष्ट है । ईश्वर की इस रचना के लिए वेद ने कहा है- इयं विसृष्टिः ऋ १०१२९, ७ अर्थात् ईश्वर की यह रचना, कारीगरी बड़ी अनोखी, अपूर्व, अद्भुत है । इसके लिए वेद ने विसृष्टि शब्द का प्रयोग किया है । वि + सृष्टि अर्थात् बनाने वाले ने इसको विविध प्रकार से, विशिष्टतापूर्वक सजाया है । जैसे कि एक सेब का फल विविध प्रकार की किस्मों में अनेक प्रदेशों में होता है । उनके बाह्य रूप की भिन्नता की तरह उन के स्वाद, गुण में विविधता, विशिष्टता मिलती है ।

एक आर्य अपने आप को ईश्वर का पुत्र मानते हुए जीवन में साधारण जनों की तरह संघर्ष करते हुए उदास, निराश, हताश नहीं होता । अपितु ईश्वरीय व्यवस्था को समझने का यत्न करता है । जैसे कि कृषि में बिना परिश्रम संघर्ष, स्पर्धा के इसके फल प्राप्त नहीं होते । जो व्यक्ति जितनी सूझ-बूझ से आशापूर्वक कृषिकार्य करता है । वह ही उस में सफल, सुखी, उत्साहित होता है । कृषि जैसी ही जीवन की स्थिति है, अतः शास्त्र स्थान-स्थान पर जीवन, शरीर की कृषि से समता दर्शाते हैं ।

परम पिता परमात्मा किसीके पूर्वजन्म को कर्मों के अनुसार उस के वह-वह शरीर देता है । संसार और शरीर दोनों ही प्यारे प्रभु की देन, वरदान, रचनायें हैं । कुछ इनको झंझट, जी का जंजाल, माया, धोखा, दुखों का घर मानते हैं । दयालु प्रभु की न्याय युक्त यह दया, देन, रचना दुखों का घर, धोखा आदि कैसे कहीं जा सकती है ? यहाँ विचारने वाली सबसे पहली बात यही है, कि जव ईश्वर सर्वज्ञ और हमारा परमपिता है, तो वह अपनी कोई रचना अपनों के लिए ही दुखों का घर, धोखा आदि रूप मेंकैसे कर सकता है ? जबकि एक साधारण से साधारण संसारी पिता अपनों के लिए कोई भी चीज दुखपूर्ण नहीं बनाता ।

जबकि हमारे शास्त्र मानव शरीर को विशेष रूप से **'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' (चरक सूत्र.-१,१५)** कहते हैं अर्थात् यह मानवतन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा आधिदैविक आधिभौतिक-आध्यात्मिक दुखों, तीनों तापों से छुटकारा दिलवाने में सहयोगी बताते हैं । जिसका स्पष्ट अभिप्राय है कि संसारी सुख और पारमार्थिक आनन्द शरीर द्वारा ही प्राप्त होता है । तभी तो कहा है- **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्-(कुमारसम्भव-५, ३३)** इसी महत्तवपूर्ण रहस्य को सामने रखकर चरक महर्षि ने कहा है-

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् ।
तदभावे हि भावानाम् सर्वाभावः शरीरिणाम् ॥ चरक निदान. ६, ७

अर्थात सर्वतः प्रथम ध्यान देने योग्य बात बताते हुए कहा है, कि अन्य सब कार्यों, बातों को पीछे रख कर पहले शरीर की संभाल करे । क्योंकि इसके अस्वस्थ, बीमार होने पर अन्य सब होते हुए भी न

हुए जैसा हो जाता है । इसीलिए हम अपने जीवन में पग-पग पर देखते हैं, कि सारी सिद्धियाँ, सफलतायें शरीर द्वारा होने वाले परिश्रम पर निर्भर हैं ।

यह जीवन तथा जगत प्रभु की अद्‌भुत रचना है । अतः ये मिथ्या, माया नहीं हो सकतीं । यह तो एक अनोखा अवसर है, जिससे हम प्रत्येक प्रकार की प्रगति कर सकते हैं । जैसे कि भारतीय मूल के अमर्त्यसेन ने अर्थशास्त्र में विशेष कार्य कर के नोबैल पुरस्कार लेकर इस अध्ययन-शोध के अवसर का कैसा अच्छा लाभ उठाया । ऐसे ही हम अपने चारों ओर देखते हैं, कि अनके क्षेत्रों में सेकड़ों ने उन-उन प्राप्त अवसरों का लाभ उठा कर केवल अपना नाम, यश ही उज्ज्वल नहीं किया, अपितु धन, प्रतिष्ठा भी प्राप्त की । ओलम्पिक खेलों में हजारों भाग लेते हैं । जो कि अपने-अपने देश की दृष्टि से योग्यतम होते हैं । इस अवसर को प्राप्त करने वालों में से दो सौ के लगभग ही पुरस्कार प्राप्त करते हैं । इनमें से कुछ तो तीन-चार या इससे अधिक स्वर्णपदक प्राप्त करते हैं । २००४ में और उसके बाद भारतीयों में से केवल राज्यवर्धन राठौर ने ही तथा रजत पदक अनेक खेलों में प्राप्त करके भारतीय स्तर पर नाम, धन ही प्राप्त नहीं किया, अपितु भारत देश के गौरव को भी बढ़ाया । यह सब तभी सिद्ध होता है, जब कोई खेल भावना के साथ आशा, उत्साहपूर्वक अवसर का लाभ उठाने की तीव्र तड़प से भरा होता है ।

मेरा आप का जीवन इसका साक्षी है, कि हमारे माता-पिता ने अपने सम्बन्धों, कर्तव्यों को निभाकर यह जीवन रूपी अवसर हमें दिया है । ऐसे ही हमारा जिससे जो सम्बन्ध है, उसके अनुरूप सम्बन्ध को निभाते हुए अपने जीवन को सफल बनायें । तभी तो वेद यत्र-तत्र रिश्तों का उदाहरण देकर बात को समझाता है ।

हाँ, यह ध्यान देने योग्य बात है, कि लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सही राह पर चलना आवश्यक होता है, भटकना नहीं । अतः आइए ! जीवन सफलता के सही राह । (सुपथा य. ४०,१६) को पहचानें और अपनायें । वह मार्ग है-

१) इस जगत के स्वामी ने हमारे भले के लिए ही ये सारे भौतिक पदार्थ दिए हैं । अतः उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए और आत्मिक बल प्राप्त करने के लिए उसकी उपासना, भक्ति करें । वह ईश्वर ही सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान आदि गुणयुक्त है । जिस-जिस में ऐसे गुण नहीं हैं, ऐसे को प्रभु के स्थान पर अपना आराध्य न बनायें ।

२) ऐसे गुणनिधान ईश्वर की आज्ञाओं का पालन ही धर्म, भक्ति, आस्तिकता है । तभी तो हमारे शास्त्र कहते हैं, कि ईश्वर के ज्ञानमय वेद ही उसकी आज्ञायें हैं । अतः यह-वह ही धर्म है । तभी तो **'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ।(वैशेषिक १,१,३), चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः (मीमांसा १,१,२)** सदृश वचन प्रचलित हुए हैं । यह ध्यान रहे- आचरण की चीज है, कीर्तन, प्रदर्शन की ही नहीं । और तभी तो कहा है- **'आचारः परमो धर्मः (मनु. १,१०८) ।**

साहित्य तथा इतिहास प्रदूषण-चिन्ता का विषय

-भावेश मेरजा

पण्डित लेखराम जी आर्यपथिक ने लिखा है कि 'रसाला एक आर्य' (महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ ?) के कर्ता लाला साईदास थे !

'कुलियात आर्य मुसाफिर' ग्रन्थ में 'सदाकते इलहाम - ईश्वरीय ज्ञान की सत्यता' प्रकरण अन्तर्गत पण्डित लेखराम जी ने लिखा है -

''अतः यदि एक 'एक आर्य रिसाला' पंडिता कलकत्ता का उत्तर जो हमारे बुजुर्ग भाई लाला साईदास जी प्रधान आर्य समाज लाहौर की चमत्कारणी लेखनी से निकला है- आप अध्ययन करें, तो इस मेरे लेख का खुला प्रमाण पर्याप्त मानेंगे । जिसका उत्तर आज तक पंडित महोदय न दे सके और संसार मासी जी का घर तो था नहीं हमारे जैसा जिगर पहिले कोई उत्पन्न तो कर ले ।''

ध्यातव्य है कि प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु ने उपर्युक्त 'एक आर्य रिसाला' ('रसाला एक आर्य') उर्दू ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ' नाम से कर, उसे प्रकाशित किया है, और वे निरन्तर ऐसा प्रतिपादन करने का प्रयास कर रहे हैं कि २२ जनवरी, १८८१ को कलकत्ता विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में आयोजित 'आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा' में सम्मिलित पौराणिक विद्वानों द्वारा किये गये प्रश्नों का जो उत्तर इस 'रसाला एक आर्य' पुस्तक में उपलब्ध है, वह स्वामी दयानन्द द्वारा अन्य से लिखवाया गया है और लाला साईदास में ऐसी योग्यता नहीं थी कि वे ऐसा उत्तर लिख सके ।

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु के ऐसे प्रयासों का दुष्परिणाम यह आया कि स्वामी दयानन्द की उत्तराधिकारिणी 'परोपकारिणी सभा' अजमेर ने २०१२ ई. में प्रकाशित 'दयानन्द ग्रन्थमाला' के तृतीय संस्करण के तृतीय भाग में इसे कलकत्ता-शास्त्रार्थ के नाम से स्वामी दयानन्द के शास्त्रार्थ के रूप में सम्मिलित कर प्रकाशित कर दिया । ऐसा साहित्य प्रदूषण नहीं होना चाहिए था, परन्तु हुआ । परन्तु 'कुलियात आर्य मुसाफिर' के उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि पंडित लेखराम जी की दृष्टि में भी 'रसाला एक आर्य' ('एक आर्य रिसाला') लाला साईदास की ही रचना है ।

पंडित लेखराम जी के इस प्रमाण को ध्यान में लेकर अब तो उठाग्रह छोड़कर सत्य को स्वीकार करना चाहिए और स्वामी दयानन्द ने जो लिखा-लिखवाया नहीं है, उसे उनके नाम से जोड़ने से पृथक् रहना चाहिए ।

మాతృ గౌరవము

-పి.వి. రమణారెడ్డి

మాతృశబ్దమునకు అర్థము. మాన్ - పూజాయాం అను "ధాతువు నుండి మాతృ శబ్దము నిష్పన్నమగుతుంది". "మాన్యతే పూజ్యతే యా సామాతా" అనగా పూజింప బడునది, గౌరవింపబడునది తల్లి. "మాజ్- మానే శబ్దేచ" అను ధాతువు నుండియు మాతృశబ్దం ఏర్పడుతుంది. "యా మిమీతే మానయతి వా సర్వాన్ పుత్రాన్ సా మాతా" అనగా, సంపూర్ణదయగలిగిన జనని తన సంతానమునకు సుఖమును, ఉన్నతిని కోరుతుంది. అందువలన ఆమెకు 'మాత' అని పేరు. మాతృ శబ్దము యొక్క ప్రథమా విభక్తి ఏకవచనం 'మాతా' ద్వివచనం 'మాతరౌ', బహువచనం 'మాతరః'.

మాతా నిర్మాతా భవతి

బిడ్డలను పాలించి, పోషించి యోగ్యుల నుగా నిర్మాణం చేయుట వలన ఆమెకు 'మాత' అని పేరు. తల్లి హస్తము పరమేశ్వరుని హస్తమే. తాననుకున్నట్లుగా తల్లి పిల్లలను పెంచి తీర్చి దిద్దుతుంది.

మాతృమహిమ మరియు గౌరవము

వేదములు, మనుస్మృతి, వాల్మీకి రామాయ ణము, మహాభరతము మొదలగు గ్రంథములు మాతృమహిమను ఎంతగానో కొనియాడినవి. ముక్త కంఠంతో ప్రశంసించి నవి.

ఉపాధ్యాయాన్దశాచార్యః ఆచార్యాణాం శతం పితా !

సహస్రం తు పితౄన్మాతా గౌరవేణా తరిచ్యతే ॥ మను మహర్షి *2-145*

పదిమంది ఉపాధ్యాయులకంటే ఒక్క ఆచార్యుడు, వందమంది ఆచార్యులకంటే ఒక్క తండ్రి, వేయి తండ్రులకంటే ఒక తల్లి అధిక గౌరవనీయురాలు.

మర్యాదా పురుషోత్తముడగు శ్రీరామ చంద్రుడు, రావణుని సంహరించి, స్వర్ణలంకను జయించినప్పుడు, లంకానగర సౌందర్యమును, వైభవశ్రీని చూచి ముగ్ధుడైన లక్ష్మణుడు రామునిట్లు ప్రార్థించాడు. "అన్నా ! మనం ఇచ్చటనే ఉండిపోదాము. ఇప్పుడు అయోధ్యానగరమునకు పోవలసిన పని ఏమి ? లాభమేమి ?" అప్పుడు శ్రీరామ చంద్రుడు తమ్ముని చూచి ప్రేమగా పలికిన పలుకులు

"అపి స్వర్ణమయీ లంకా న మే లక్ష్మణ రోచతే ।
జననీ జన్మభూమిశ్చ స్వర్గాదపి గరీయసీ ॥

ఓ లక్ష్మణా ! నాకు ఈ బంగారు లంక ఏమాత్రము యిష్టం లేదు. జన్మనిచ్చిన తల్లి, జన్మనిచ్చిన దేశము స్వర్గముకంటే మిన్న. ఇది ప్రజలనుకొనే మాట.

చూడండి ! శ్రీరామచంద్రునకు జనని అన్నా, జన్మభూమి అన్నా ఎంతటి అగాధ శ్రద్ధ ఉన్నదో.

నేపాల్ మహారాజు గారు తన దేశమున కరెన్సీ నోట్ల మీద ఒక రూపాయి నుండి 100 రూపాయల నోట్ల వరకు అజ్ఞత కవి యొక్క ఈ "జనీ జన్మ భూమిశ్చ స్వర్గాదపి గరీయసీ" అన్న అమర వాక్యములను ముద్రింపించారు. నేపాల్ ప్రజలలో ఆర్య సంస్కృతి ప్రభావము అధికంగా ఉన్నది.

మహాభారతంలో వన పర్వమునందుగల 'యక్ష యుధిష్ఠిర సంవాదము' న మాతృ మహిమ కొనియాడబడినది.

యక్ష ఉవాచ : యక్షుని ప్రశ్న.

"కాస్విద్ గురుతరా భూమేః కిం స్విరుచ్చతరం చ ఖాత్

కింస్వి చ్ఛీఘ్రతరం వాయోః కిం స్విద్ బహుతరం తృణాత్ ॥

భావార్థము : భూమి కంటే భారీ ఐనదేది? ఆకాశంకంటెను ఎత్తైనదేది ? వాయువు కంటే శీఘ్రంగా వెళ్ళునదేది ? గడ్డిపోచలకంటె అసంఖ్యము (విస్తృతం) అనంతమైన దేది ?

యుధిష్ఠిర ఉవాచ : (యుధిష్ఠిరుని జవాబు)

"మాతా గురులతరా భూమేః పితా చోచ్చతరం చ ఖాత్ ।

మనః శీఘ్రతరం వాతాచ్చిన్తా బహుతరీ తృణాత్ ॥

భావార్థము : మాతృమూర్తి పృథ్వికంటె భారీ అయినది. పితృమూర్తి ఆకాశముకంటే ఎత్తైనవాడు. మనస్సు వాయువు కంటే అధిక తీవ్రగామి, చిన్త (దిగులు) గడ్డిపోచలకంటె, అధికము, అసంఖ్యము, అనంతము గూడ.

"నాస్తి మాతృసమో గురుః" *భారతం అను 105-15*

తల్లితో సమానమైన గురువు ఎవరూ లేరు. మనుధర్మ శాస్త్రమందు (2-226) పృథ్వి స్వరూపమే తల్లి అని వర్ణించ బడినది.

"ఆచార్యో బ్రహ్మణోమూర్తిః పితా మూర్తిః ప్రజాపతేః ।

మాతా వృధివ్యా మూర్తిస్తు భ్రాతా స్వోమూర్తిరాత్మనః ॥

అర్థము : వేదజ్ఞానప్రదానం వలన ఆచార్యుడు బ్రహ్మమూర్తి. పాలించి పోషించి నందున తండ్రి ప్రజాపతిమూర్తి. పాలించుట మరియు సహనశీలత వలన తల్లి పృథ్విమూర్తి. జ్యేష్ఠ సోదరుడు సహాయపడుట వలన నీ ఆత్మ స్వరూపమే.

బిడ్డల విషయంలో తల్లి కర్తవ్యము-మరియు ఉపదేశము

మహర్షి దయానందులవారు సత్యార్థ ప్రకాశమనే గ్రంథములో రెండవ సముల్లా సములో ఈలా వ్రాస్తున్నారు.

"మాతృమాన్ పితృమాన్ ఆచార్యవాన్ పురుషో వేద ! *శతపథ బ్రాహ్మణము*

మనకు ముగ్గురు ఉత్తమ శిక్షణగురుపు వారున్నారు. ఒకరు తల్లి, రెండవవారు తండ్రి, మూడవవారు గురువు లేక ఆచార్యుడు. ముగ్గురు లభించినచో మను ష్యుడు జ్ఞానవంతుడగుతాడు. అట్టి జ్ఞానులున్న కులము, వంశము ధన్యమైనది. విద్వాం సులు, ధార్మికులైన తల్లిదండ్రులు కల బిడ్డలు అదృష్టవంతులు, సౌభాగ్యవంతులు. తల్లి నుండ బిడ్డలకు లభించే ఉపదేశము, ఉప కారం మరెవరివలన లభించదు. తల్లి చూపే ప్రేమ, మమకారం, హితకామన మరెవరు చూపగలరు ? అందువలననే తల్లి కలవాడు (మాతృమాన్ పురుషః)గా పురుషు డుండాలని పెద్దల కోరిక.

"ప్రశస్తా ధార్మికీ విదుషీ మాతా విద్యతే యస్య సమాతృమాన్"

పుట్టినప్పటి నుండి పూర్ణవిద్వాంసులగు వరకు సుశీలమును బోధించు తల్లి ఎంతో ధన్యురాలు.

ఐదు సంవత్సరముల వరకు తల్లి ద్వారా శిక్షణ

(చదువు)

సంతానమునకు సభ్యత కలగాలన్నా, శరీరంతో ఏ చెడు పనులు చేయకుండా ఉండాలన్నా, మొదట ఐదు సంవత్సరముల వరకు తల్లి ఆధీనంలో పిల్లలు తర్ఫీదు కావాలి. మాటలు వచ్చేటప్పుడు పిల్లవాని నాలుక స్పష్టంగా మాట్లాడునట్లు నేర్పాలి. ప్రతి వర్ణము (అక్షరము) నకు ఉచ్చారణ స్థానమేదో తెలియచేయాలి. "ఏ వర్ణమునకు ఓష్ఠములు ఉచ్చారణ స్థానమో రెండు పెదవులను కలిపి ఉచ్చరించవలెనని హ్రస్వము-దీర్ఘము-ప్లుతమును ఎలా పలుకాలో తెలుపాలి. మధురము, గంభీరము, సుందరమైన స్వరంతో అక్షరములను, మాత్రలను, పదములను, వాక్యములను కలిపిగాని, వేరు వేరుగా గాని, భిన్న భిన్నముగా వినబడునట్లు పలకడం నేర్పాలి.

కొంచెం కొంచెంగా మాటలు రావడం అర్థం చేసికోవడం కలిగినప్పుడు చన్న వాళ్ళతో, పెద్దవాళ్ళతో, తండ్రితో, తల్లితో, అధికారులతో, విద్వాంసులు మొదలైనవారితో ఎలా సంభాషించవలో నేర్పాలి. వారి వద్ద ఎలా కూర్చోవాలనే విషయమునున్నూ చూపించాలి. దీనివలన పెద్దల వద్ద అనుచిత వ్యవహారం చేసే ప్రమాదం రాదు. అన్ని చోట్లను ప్రతిష్ఠ కలుగునట్లుగా ఉండాలి. బిడ్డలు జితేంద్రియులుగాను, విద్యా ప్రియులుగాను, సత్సంగ మునందు అభిలాష కలుగునట్లు తల్లి ప్రయత్నించాలి.

వ్యర్థచేష్టలు, నిష్కారణంగా రోదనం, వెకిలినవ్వులు, పోట్లాటలు, హర్షశోకములు, ఏ వస్తువునందైనను లోభత్వము ఈర్ష్యా ద్వేషాదులు-వీటికి లోనుగాకుండా సంతాన ముండాలి. ఉపస్థేంద్రియ స్పర్శగాని, మూర్ద నంగాని చేయరాదు. దానివలన వీర్యము క్షీణించి నపుసకులు కాగల ప్రమాదమ్మున్నది. చేతికి దుర్గంధమున్నూ కలుగుతుంది. అందుచే వాటిని స్పర్శించ రాదు. సదా సత్యభాషణము, శౌర్యము, ధైర్యము, ప్రసన్న వదనము మొదలగు సద్గుణములు పిల్లలకబ్బు నట్టు తల్లి యథాశక్తి ప్రయత్నించుచుండాలి.

అతి తాలసవలన సంతానమునకు హాని, తాడనం మీద లాభము కలుగుతుంది. చదివించడంలో ఎప్పుడూ లాలించకుండా అదిరించి, బెదిరించి, క్రమశిక్షణలో పెరిగిన బిడ్డలే విద్వాంసులు, సభ్యులు, సుశిక్షితులైనారు. ఇందుకు వ్యాకరణ మహాభాష్యవే ప్రమాణము.

"సామృతైః పాణిభిర్ఘ్నన్తి గురవో న విషోక్షితైః ।
లాలనాశ్రయిణో దోషాస్తాడనాశ్రయిణో గుణాః ॥

అర్థము : ఏ తల్లిదండ్రులు తమ బిడ్డలను గాని ఆచార్యులు తమ శిష్యులను గాని తాడన చేయుదురో (తాడనం-కొట్టుట అంటే సరియైన క్రమశిక్షణలో పెట్టుట) ఆ తల్లి దండ్రులు గాని, ఆ ఆచార్యులు గాని తమ బిడ్డలకు, శిష్యులకు తమ చేతులతో అమృతం త్రాగించిన వారగుతారు. ఇందుకు వ్యతిరేకంగా లాలించే తల్లిదండ్రులు, గురువులు తమ బిడ్డలకు, శిష్యులకు విషం త్రాగించే వారగుతారు. గారాబం వలన పిల్లలందుగాని, శిష్యులందు గాని దోషాలధికమై ప్రాప్తిస్తాయి. అందువలన తల్లిదండ్రులుగాని, గురువులు గాని శిక్షిస్తే ప్రసన్నులై పిల్లలు బాగుండాలి. వారు గారాబం చేస్తే చెడిపోదురను భయంతో అప్రసన్నంగా ఉండాలి. అయితే తల్లిదండ్రులుగాని, గురువులుగాని ఈర్ష్యాద్వేషాలతో కొట్టరాదు, తిట్టరాదు. పైకి భయం పెట్టినను, హృదయములందు కృపాదృష్టితో ప్రవర్తించాలి.

మహభాష్యకారుడు చెప్పిన ఈ సలహాను చాణక్యుడు తన నీతిశాస్త్రమందున్న 12వ శ్లోకం ద్వారా సమర్థిస్తున్నాడు.

"లాలనాద్ బహవో దోషాస్తాడనాద్ బహవో గుణాః ।
తస్మాత్పుత్రంచ శిష్యంచ తాడయేన్నతు లాలయేత్ ॥

అర్థము : లాలించి గారాబ్ చేస్తే పిల్లలకు అనేకమైన అవగునాలొస్తాయి. దండించి, క్రమశిక్షణలో పెట్టినప్పుడు వారికి అనేక సద్గుణాలొస్తాయి. అందువలన లాలించరాదు. అబ్బాయిలనుగాని, అమ్మాయిలనుగాని దండించాలే గాని లాలించరాదు.

వాల్మీకి రామాయణంలో సుమిత్ర పుత్రుడైన లక్ష్మణునకు ఆదర్శవ్యవహార కౌశల్యమును ఉపదేశించి భారతీయ సాంస్కృతిక పునాదులను దృఢపరచింది. రామవనగమన సమయంలో ఆమె లక్ష్మణునితో అన్న మాటలు.

"రామం దశరథం విద్ధి మాం విద్ధి జనకాత్మజామ్ ।
అయోధ్యామటవీం విద్ధి గచ్ఛ తాత యథాసుఖమ్ ॥

ఓ బిడ్డా ! (అరణ్యములో నీకు తల్లి-తండ్రి అయోధ్యానగరం జ్ఞాపకం వస్తే) శ్రీరామచంద్రునే నీ తండ్రి దశరథుడని భావించు. సీతాదేవిని నాతో సమానంగా తల్లిగా భావించు అడవనే అయోధ్యానగర ముగా తలంచు నాయనా ! సుఖంగా వనానికి బయలుదేరు.

వాల్మీకి రామాయణంలో చెప్పబడిన ఈ సుందరోపదేశము వ్యవహార కౌశల్యమునకు అనుకరణీయమైన ఉదాహరణ. పెద్దన్నను తండ్రిగా, వదినను తల్లిగా తలవాలి. కాని నేడది అశ్లీలమునకు-వికారమునకు దారి తీస్తున్నది. సంత తులసీదాసు తన రామాయణంలో ఇదే మాటంటాడు.

"తాత తుమ్హారీ వైదేహీ ! పితా రాము సబభాంతి సనేహీ ? వైదికాదర్శము-మాతృకామన
"మమ పుత్రాః శత్రుహణోऽథో మే దుహితా విరాట్
ఉతాహమస్మి సంజయా పత్యౌ మే శ్లోక ఉత్తమః ॥ ఋ-10-159-3

అర్థము : నా పుత్రులు శత్రువుల తాటలు తీసేవారు కావాలి. నా పుత్రికలు అద్వితీయ తేజస్వినులుగా ఉండాలి. సుదూర దేశము నందు మా పిల్లలకు వవాహం జరగాలి. సర్వగుణములు కలిగి ఉండాలి. నేనున్నూ విజయధ్వజాన్ని ఎగరవేయాలి. నా భర్త ఉత్తమ కీర్తిని సంపాదించాలి.

వైదిక నారి అబలకాదు. వీర ప్రసవిని, ఓజస్విని నావైపుకు దృష్టిని సారించినవాడు పరాజితుడై నశించిపోతాడు.

మా పుత్రులు ఆచార్య ద్రోణుని మాటల్లో దండోరావేసి నిర్భయంగా చెప్పగలగాలి.

"అగ్రతశ్చతురో వేదాః పృష్ఠతః సశరం ధనుః ।
ఇదం బ్రాహ్మ మిదం క్షాత్రం శాపదపి శరాదపి ॥

అర్థము : నాముందు నాలుగు వేదాలున్నవి. నా వెనుక ధనుర్బాణము లున్నవి. ముందున్నది బ్రాహ్మశక్తి. వెనకున్నది క్షాత్రశక్తి. శపించగాని లేక శరీరప్రయోగము

చేసి గాని లేక రెండింట ద్వారా కాని శత్రువుల మానమర్దనం చేయగలను.

"కిం తేన జాతు జాతేన మాతుర్యౌవనహారిణా ।
ఆరోహతి న యః స్వస్య వంశస్యాగ్రే ధ్వజో యథా ॥
పంచతన్త్రం 1-27

అర్థము : తన వంశంలో ధ్వజాగ్రభాగ్ వలె రెపరెపలాడని పుత్రుడు జన్మించి ఏమి ప్రయోజనం ? తల్లి యౌవనమును హరించ డమే అతని పని. హిందిలో ఒక కవి అన్నట్లు

"జననీ జనే తో భక్త జనే యా దాతా యా శూర ।
నాతో జననీ జాంఝు రహే కాహే గవావె నూర్ ॥

అర్థము : తల్లులు కనే పుత్రులు జ్ఞానవంతులుగానో, పరాక్రమవంతులుగానో, వ్యాపారదక్షులుగానో, ధర్మైక పరాయణులు గానో ఉండాలి. అలాంటి బిడ్డలను కనలేనప్పు డు జీవతమును వ్యర్థం చేసుకొనే దానికంటె వంధ్యగా ఉండుటేమేలు. వీరపుత్రులను కన్నచో దేశమునకు కల్యాణము కలుగుతుంది.

సంతతి నిర్మాణంలో - మాతృసంస్కారము

తల్లులు చేయలేనిదేమున్నది ? మాతృ మూర్తులు నిర్మాతలేగాక ప్రపంచ స్వరూపాన్నే మార్చివేయగలరు. తల్లి ఒక మూస, అందులో బిడ్డలు తయారగుతారు అనుకుంటే అమ్మలు వీరపుత్రులను తయారు చేయగలరు.

"మాతా కే బనాయే పుత్ర కాయర ఔర కపూత హెూత
మాతాకే బనాయె పుత్ర వీర బనజాతే హైం"
ఎవరో అన్న మాటలు

అర్థము : తల్లి గర్భంలో నున్న బిడ్డకు- తల్లిమస్తిష్కమందుండే ఆలోచనలే బిడ్డకు సంక్రమిస్తాయి. ఆమెకు పిరికిపోతు ఆలోచన లుంటే సంతతియు అలానేకాగలదు. వీరధీర స్వభావముంటే సంతానమున్న వీరులుగా కాగలరు. ఇందుకు ప్రాచీన కాలమందున్న చారిత్రక ప్రమాణం చూడగలము.

1) అభిమన్యుడు సుభద్రాదేవి గర్భమందుండగా అర్జునుడు ఆమెకు చక్రవ్యూహము భేదించు విషయం తెలియజే యుచుండేవాడు. దీని ఫలితంగా అభిమ న్యుడు చక్రవ్యూహమును భేదించుకుంటూ లోపలికి ప్రవేశించాడు. ఆ వీరుడు అనేక యోద్ధలకు మృత్యుముఖం చూపించాడు. అయితే అర్జునుడు చక్రవ్యూహం నుండి బయటికి వచ్చే విషయం సుభద్రకు చెప్ప లేదని అంటారు. అందుచేత వీరాభిమన్యుడు వ్యూహము నుండి బయటికి రాలేకపోయాడు. చివరకు ఏడ్గురు మహారథులందరు కలిసి ఒక్కసారిగా వచ్చి అభిమన్యుని వధించారు. ఈ విషయం వ్రాసిన వారి అభిప్రాయమేమి? గర్భమందున్న బిడ్డల మీద తల్లుల ఆలోచనా ప్రభావం, తల్లుల సంస్కారం ప్రబలంగా ఉంటుదని తెల్పడమే.

2) అష్టావక్రుడు ఋషి. ఎనిమిది సంవత్సరముల వయస్సులోనే ఆయన వేదములను, వేదాంతములను (ఉపని షత్తులు) నేర్చుకోగలిగాడు. కారణం ఏమి ? ఆయన తల్లి గర్భంలో ఉన్నప్పుడు ఆమె ప్రతిదినం వేదాధ్యయనం చేయుచుండెడిది.

3) దుష్యంత మహారాజు పుత్రుడైన భరతుని నిర్మాణమున్ను తల్లియైన శకుంతల గర్భమందే జరిగినది. భరతునకు వయస్సు ఆరు సంవత్సరాలే. ఆ వయస్సులో ఆ బాలకుడు సింహపు పిల్లలతో ఆడుకొనేవాడు. గర్జిస్తూ ఆ పసిబిడ్డ అనేవాడు గదా.

"జృంభస్వ రే సింహశాబక ।
జృంభస్వ దన్తాన తే గణయిష్యామి"
శాకుంతలము 7వ అంకము

ఓ సింహం పిల్లా నీ ముఖం తెరువు నేను నీ పండ్లను లెక్కిస్తా.

4) వీరక్షత్రి యాంగనలు తమ పుత్రులను ఎలా తయారుచేయుదురో వినండి.

"ఆకాశమంతా భయంకరంగా మేఘాలు కమ్ముకున్నవి. గర్జిస్తున్నవి. మెరుపులు మెరుస్తున్నవి. ఈ గర్జనలకు నా గర్భమందున్న బిడ్డడు ఉలిక్కిపడునేమో, అందువలన మేఘాలను సంబోధిస్తూ తల్లులన్నమాటలు.

తల్లి-ఓ మేఘమా ! గర్జించవద్దు

మేఘం - ఎందుకు ?

తల్లి - నా గర్భంలో బిడ్డడున్నాడు. నీ గర్జనలను విని ఏదో సింహం గర్జిస్తున్నదని వాడు దానితో పోట్లాడుటకు గంతులేస్తాడు. దాని వలన నాకు కష్టంగా ఉంటుంది.

5) ప్రాచీన చరిత్రలో చెప్పుకోదగ్గ ఉదాహ రణ ఏదైనా ఉన్నదంటే అది మాతృమూర్తి మదాలసాదేవి. ఆమెకు ముగ్గురు పుత్రులు కలిగారు. వారి పేర్లు-విక్రాంతుడు, సుబాహువు, అరిదమనుడు తల్లి లాలిపాట పాడుతూ అంటుంది.

"శుద్ధోఽసి బుద్ధోఽసి నిరంజనోఽసి సంసారమాయా పరివర్జితోఽసి సంసార మాయాం త్యజ మోహనిద్రాం మదాలసా శిక్షయతీహ బాలమ్ ।

అర్థము : ఓనా బిడ్డా ! నీవు పరిశుద్ధుడవు. బుద్ధుడవు నిరంజనుడవు (నిర్దోషి) సాంసారికమాయను పూర్తిగా త్యజించిన వాడవు కాబట్టి ఈ సంసారమాయను త్యజింజు. లెమ్ము, నిలుచో, మోహ నిద్రను వదలపెట్టు. ఈ విధంగా మదాలస తన బిడ్డకు ఉపదేశిస్తుండెడిది.

ఈ రకమైన శిక్షణ యిచ్చుట ద్వారా- ముగ్గురు రాజకుమారులు రాజ్యపదవీ వ్యామోహమును వదలి వనములకు వెళ్ళారు. ఈ స్థితిని చూచి మహారాజు చింతించి ఈలా అయితే మనవంశమెలా నిలుస్తుంది. అందరిని యోగీశ్వరులను చేస్తావా- అని మదాలసతో అన్నాడు. అప్పుడు ఆమె నాల్గవ పుత్రుడు గర్భమందుండగా తన మానసిక స్థితిని మార్చుకొనుట ద్వారా సర్వగుణసంప న్నుడైన క్షత్రియ పుత్రునికన్నది. ఆమె ఆ బిడ్డకు 'అలర్క' అని పేరు పెట్టినది. అలర్క అంటే 'పిచ్చికుక్క' అని అర్థము. బిడ్డకు తల్లి రాజనీతిశాస్త్రమును బోధించింది. ఆ బిడ్డను ఉయ్యాలలో ఊపుతూ జోలపాట ఈ క్రింది విధంగా పాడుచుండెడిది.

స్వామి దయానంద సరస్వతి

-డా|| టి.వి. నారాయణ

మహర్షి స్వామి దయానంద సరస్వతుల వారు ప్రకాండ వేద పండితులు. నిరుపమాన రాష్ట్రవాది. ప్రగాఢ నిద్రాణములో నున్న భారతీయ జాతిని జాగరూకులుగా అప్రమత్తులుగా వీర్యవంతులుగా చేసిన ప్రప్రథమ వైతాళికుడు. ప్రాచీన భారతీయ సంస్కృతిని సముద్ధరించి వేదవిహిత విజ్ఞాన భండారమును ప్రపంచమునకు పంచి పెట్టిన మహర్షి. మన రాష్ట్రపితయైన బాపూజీ దయానందుని గూర్చి యీ విధముగా సెలవిచ్చియున్నారు.

"మహర్షి దయానందుడు భారతదేశములోని ఆధునిక ఋషులలో, సంఘసంస్కర్తలలో శ్రేష్ఠులయిన వారిలో ఒకరు. వారి బ్రహ్మచర్యము, వారి భావస్వతంత్ర్యము, వారి వశ్వమానవ ప్రేమ వారి కార్యకుశలత మున్నగు సద్గుణములు వారిని కలిసిన వారందరిని ముగ్ధులుగా చేయుచుండెడివి."

కవీంద్రుడయిన రవీంద్రుడు స్వామి దయానందుని గూర్చి యీ విధముగా వాక్రుచ్చెను.

"సోమరితనం నుండ ప్రాచీన ఐతిహాసిక ప్రగాఢమైన అజ్ఞానము నుండి భారత దేశమునకు ముక్తిని ప్రసాదించి పవిత్రమైన జాగృతిలోకి మేలుకొల్పిన గురువర్యుడైన దయానందునకు కోటి కోటి ప్రణామములు."

స్వామి దయానందుడు వేదములకు విజ్ఞానయుతమైన భాష్యమును వ్రాసి ఆ ప్రాచీన గ్రంథములలో నున్న ఆధ్యాత్మిక తత్త్వమును వేదాంత విద్యను ఆయుర్వేద జ్యోతిశ్శాస్త్రములు మున్నగు సమస్త సత్యవిద్యలకు, విద్యచే నెరుగబడు సర్వ విజ్ఞానమునకు గనులని నిరుక్త శాస్త్ర సహాయమున నిరూపించినాడు.

ఈ మధ్య కాలములో బ్రహ్మతత్వమును మరచి ముక్కోటి దేవతలను పూజించుచున్న హిందువులకు ఏకేశ్వరోపాసనము ప్రబోధించి, ఆధ్యాత్మికముగ వారిని ఉద్ధరించడమే గాకుండా ప్రపంచములోని అన్ని మతములకు వేదములే ఏకేశ్వరోపాసన పాఠమును ప్రప్రథమున బోధించిన దని నిరూపించనాడు. (వారు వ్రాసిన ఉద్గ్రంథమయిన) 'సత్యార్థ ప్రకాశము'లోని ప్రథమ సముల్లాసము యీ విధముగా ప్రారంభమగుచున్నది.

ఓమ్‌శన్నో మిత్రఃశం వరుణః శన్నో భవత్వర్యమా !
శననఇన్ద్రోహస్పతిః, శన్నో వషణరురుక్రమః
నమో బ్రహ్మణే, నమస్తేవాయో,
త్వమేవ ప్రత్యక్షం బ్రహ్మాసి,
త్వామేవ ప్రత్యక్షం బ్రహ్మవదిష్యామి, ఋతం వదిష్యామి, సత్యం వదిష్యామి, తన్మామవతు తద్వక్తారమవతు, అవతు మామవతు వక్తారమ్ ఓం శాన్తి శ్శాన్తి శ్శాన్తిః

అర్థము :- (ఓమ్) ఓంకార శబ్దము పరమేశ్వరుని సర్వోత్తమ నామము. ఇందలి అ, ఉ, మ్, అను మూడక్షరములు కలిసి ఒక (ఓమ్) సముదాయమైనది. ఈ నామము నుండి పరమేశ్వరుని యనేక నామములు పొడము చున్నవి. ఎట్లనగా అకారము విరాట్, అగ్ని, విశ్వాద నామములకును, ఉకారము హిరణ్యా గర్భ, వాయు, తైజసాది నామముల కును, మకారము ఈశ్వర, ఆదిత్య, ప్రజ్ఞాది నామములకును వాచకములును గ్రాహకములునైయున్నవి, ఇట్లే వేదాది సత్య శాస్త్రములు స్పష్టముగా వ్యాఖ్యానించి యున్నవి. కాన ప్రకరణానుకూల మీ నామములన్నియు పరమేశ్వరునివే.

స్వామి దయానందుడు అనన్య సామాన్యమైన రాష్ట్రవాది, దేశభక్తుడు. స్వాములవారి కార్యక్రమము మన స్వాతంత్ర్యసమరములోని ప్రథమ పాదమని చెప్పుటలో ఎంత మాత్రము అతిశయోక్తి లేదు. వారి ప్రతి వచనములో దేశ భక్తి సంపూర్ణముగా నిండి యుండనది. "స్వదేశ రాజ్యమే శ్రేష్ఠమయినది, ఉత్తమోత్తమమయినది, విదేశీయుల రాజ్యము ఎంత మంచిదయినను, సుఖప్రదమైనది కాజాలదు. మన దేశము అన్ని దేశములలో కంటే శ్రేష్ఠమయినది. భారత వర్షము ఒక అఖండ స్వతంత్ర స్వాధీన నిర్భయ దేశము కావాలని నా ఆకాంక్ష."

"భారతవర్షము విశ్వములో ఒక శక్తి భూమిగా చేతనాభూమిగా పుణ్యభూమిగా మనవలెనని నా కల్పన" ఈ ఉత్తమమైన కాంక్షచే ప్రేరితులై స్వామీ దయానందుల వారు స్వదేశ ప్రేమ, స్వరాజ్య శ్రేయోరాజ్య సందేశమును ప్రసరించుటకై ఆ సేతు హిమాచల పర్యంతము యాత్రలు గావించెను. తత్పరిణామముగనే వారు స్థాపించన ఆర్య సమాజము యొక్క అనుయాయులలో అగ్రగణ్యులయిన దేశ భక్తులుద్భవించనారు, భగతసింగ్, చంద్రశేఖర్ ఆజాద్ లాంటి విప్లవ కారులయిన భారత పుత్రులు వారి అనుయాయులలోని వారే. ప్రపంచమున కుపకార మొనర్చుట యీ సమాజము యొక్క ముఖ్యోద్దేశము. అనగా శారీరక, ఆధ్యాత్మిక మరియు సామాజిక ఉన్నతిని బడయుట.

అందరితో ప్రేమ పూర్వకముగా, ధర్మానుసారముగా యథా యోగ్యముగా వ్యవహరించవలయును.

ప్రతియొక్కరూ తమ యున్నతి యందే సంతృప్తులు గాక అందరి యున్నతిలో తమ యున్నతిని యెంచవలయును.

మహర్షి స్వామి దయానందుడు "కృణ్వంతో వశ్వమార్యం" అను వేదసూక్తిని జాటి విశ్వములో నున్న మానవుల నందరినీ ఉత్తమ మానవులుగా చేయవలెనని ప్రబోధన చేసినాడు. అఖండ బ్రహ్మచారి, ప్రకాండ వేద విద్వాంసులు, అసమాన రాష్ట్రవాది, అనన్య సామాన్య సంఘ సంస్కర్త, అపూర్వ తర్కవాది, గురుకుల విద్యా ప్రచార వేత్త అయిన మహర్షి స్వామి దయానందుడు పరమ పూజ్యుడు. ప్రాతః స్మరణీయుడు.

మహర్షి స్వామి దయానందుల వారు సంస్కృతములో ప్రకాండ పండితుడు, నాలుగువేదములను, షడ్దర్శనములను ఇతర వేదాంగములను కూలంకషముగా స్వాధ్యాయముచేసి మానవ కళ్యాణమునకై ఐహికా

ముష్మిక సుఖసంతోషములను ప్రసాదించు మానవ ధర్మమును ప్రచారము చేసిన ప్రవక్త.

సత్యాన్వేషణము, ధర్మానువర్తనము, మానవ కళ్యాణము వారి ఉపదేశములలోని మూల సూత్రములు. "విద్వాంసులయిన వారు పక్షపాతము వదిలి సర్వతంత్ర సిద్ధాంతమును అనగా అందరికీ అనుకూలమైన సత్యమును గ్రహించి పరస్పర విరుద్ధములగు వానిని త్యజించి అన్యోన్య ప్రీతితో వర్తిల్లుచు అందరినీ అట్లే వర్తింప జేయుదురేని జగత్తునకు సంపూర్ణహితము ఒనగూడగలదు. విద్వాంసుల యందలి వరోధము చేతనే మూఢులయందును విరోధము పెరిగి నానా విధములగు దుఃఖములు ప్రబలి సుఖమడుగంటుచున్నది. స్వార్థులకు ప్రియమగు ఈ హానియే మనుషుల నందరినీ దుఃఖ సాగరమున ముంచి వేసినది." అని దయానందుల వారు వ్రాసిన సత్యార్థ ప్రకాశమను మహా గ్రంథము యొక్క భూమికలో సెలవిచ్చినాడు.

"సత్యమేవ జయతే నానృతం, సత్యేన పంథా వితతో దేవయానః" అను ఉపనిషత్ సూక్తి యందు వారికి దృఢమైన నమ్మకము కల్గియుండెను.

"సర్వదా సత్యమునకు విజయమును, అసత్యమునకు పరాజయమును కలుగును. సత్యము చేతనే విద్వాంసుల యొక్క మార్గము విస్తారమగుచున్నయది", అని యీ సూక్తి యొక్క అర్థము, "అసత్యమును సర్వదా త్యజించి సత్యమును ఎల్లప్పుడు ఎల్ల వేళల యందు గ్రహించుటయే, మనన శీలుడైన మానవుని యొక్క ధర్మము" అని స్వాముల వారు ఉద్ఘోధించినాడు. మూఢ నమ్మక ములను త్యజించిదేశకాల పరిస్థితుల నర్థము చేసికొని యే వషయమునైనను తర్కముతో పరీక్షించిన తరువాత అది సత్యమనియు, సర్వమానవ హితకారిణి అనియు తేలిన పిమ్మటనే, దానిని గ్రహించవలెనని ఆయన పదే పదే వక్కాణించి నాడు.

ఏకేశ్వరోపాసనము వార సిద్ధాంత ములలో మౌలిక మైనది. సర్వాంతర్యామి, సర్వశక్తిమంతుడు, జ్ఞానస్వరూపుడు, సచ్చిదా నందమయుడు, అయిన పరమేశ్వరుడు నిరాకారుడని ఆ పరబ్రహ్మ మొక్కనినే ఉపాసన చేయవలెనని దయానందుడు ప్రబోధించనాడు. ఆ పరమేశ్వరుని వవిధ మతములవారు వివిధ భాషలలో విభిన్న ములయిన పేర్లతో పిలుచుచున్నారు. అనంతైశ్వర్యము గల వాడు గనుక శ్వరుడని, ఎల్లరికంటే స్వేచ్ఛుడగుటచే వరుణుడని, గొప్ప వారికంటే గొప్ప వాడగుట వలన బృహస్పతి అని, చరాచర జగత్తునందు వ్యాపకుడగుటచే విష్ణువని, సర్వేశ్వరుడని ఆయా పేర్లచే పిలువ బడుచున్నాడు.

మన మహర్షులు ఆధ్యాత్మిక విద్యలో గూఢముగా అనుసంధానము చేసి విజ్ఞాన యుక్తముగా పరమేశ్వరునకు సర్వనామముల ప్రతీకముగా 'ఓమ్' అని పేరును యిచ్చినారు.

సర్వే వేదా యత్పదమామనన్తి తపాంసి సర్వాణీచ యద్వదన్తి ।

యదిచ్ఛన్తో బ్రహ్మచర్యం చరన్తి, తత్తేపదం సంగ్రహేణ బ్రవీమి ఓమిత్యేతత్ ॥

తా॥ "అన్ని వేదములు దేటని గురించి ప్రశంసించుచున్నవో అన్ని విధముల తపస్సులు యే పరమాత్మను పొందుటకు వాక్రుచ్చుచున్నవో దేనిని వరించి, ఋషులు, మును, బ్రహ్మచర్య వ్రతము నాచరించు చున్నారో దానిని సంగ్రహముగా "ఓమ్" అని చెప్పుచున్నాము" అని కఠోపనిషత్తులో గురువ ర్యుడయిన యముడు, శిష్యాగ్రేసరుడయిన నచికేతునకు ప్రబోధించినాడు.

స్వామి దయానందుడు వైదిక ధర్మము నుద్ధరించుటకై "ఆర్య సమాజ"మను ఒక సంస్థను స్థాపించనాడు. ఆ సంస్థలో చేరువారు పది ముఖ్యమైన నియమములను పాటించవలయును.

"ప్రపంచమునకు ఉపకార మొనర్చుటయే ఆర్య సమాజము యొక్క ముఖ్యోద్దేశ్యము". అందరి మానవుల యొక్క శారీరిక, ఆధ్యాత్మిక మరియు సామాజిక ఉన్నతిని సాధించుటకై అందరూ ప్రయత్నించవలయును.

ఇది దశనియమములలో ముఖ్యమైన నియమము.

"అందరితో ప్రేమ పూర్వకముగాను, ధర్మానుసారముగను, యథాయోగ్యముగాను వ్యవహరించవలయును".

"ప్రతి ఒక్కరూ తమ ఉన్నతి యందే సంతృప్తులుగాక అందరి ఉన్నతిలో తమ ఉన్నతిని ఎంచవలయును".

భారతజాతి ఆ వీతరాగి ప్రభంజన మూర్తికి, సత్యమూర్తికి, వైదిక ధర్మ ప్రచార కర్తకు, నవయుగ ప్రవక్తకు ఎంతయో ఋణపడియున్నది.

మహర్షి స్వామి దయానందుడు వైదిక ధర్మమును పునరుద్ధరించన ఆచార్య వర్యులలో ప్రముఖ పాత్ర వహించినాడు. చతుర్వేద ములను, షడ్దర్శనములను, వేదాంగములను నిరుక్తమును కూలంకషముగా స్వాధ్యాయము చేసి ఆ గ్రంథములలో నున్న వజ్ఞానములను ఆధ్యాత్మిక విషయ సంపదను భారత దేశమునకే గాక సర్వమానవ కళ్యాణమునకై తన ప్రవచనముల ద్వారా మరయు గ్రంథముల ద్వారా ప్రచారము చేసినాడు.

ఆర్ష గ్రంథములను పునరుద్ధరించడమే గాక వేద ధర్మము యొక్క నిజస్వరూపమును విశదముగా వెల్లడి చేసనాడు. ఏకేశ్వరోపాసన ప్రణవము యొక్క వ్యాఖ్యను విస్తృతముగాను సమగ్రముగాను మరియు సమన్వయ పూర్వకముగాను చేసి భక్తులకు, ముముక్షువు లకు యెనలేని సేవ చేసినాడు.

స్వామి దయానందుడు ధర్మము యొక్క లక్షణమును ఈ విధంగా బోధించనాడు. పక్షపాత రహితము, న్యాయము, సత్య గ్రహణం, సర్వదా అసత్య త్యాగము అను ఆచారమునకే ధర్మమని నామము. విజ్ఞాన యుక్తముగా నడుచుకొనుట, సర్వమానవ కళ్యాణమును కాంక్షించుట మహాత్ములు బోధించన మార్గమును అనుసరించుట, సదాచారులను, సత్పురుషుల ఆచరణమును అనుకరించుట మరియు తన అంతరాత్మ ప్రబోధనము ప్రకారముగా వ్యవహరించుట ఇవియే ధర్మమునకు నాల్గు లక్షణములు.

స్వామి దయానందుల వారు భారతీయ వద్యావధానమును బహుళముగా ప్రచారము లోకి తెచ్చిన వద్యావేత్త. గురుకుల వద్యా విధానమును ప్రవేశపెట్టి మన బాలబాలి కలలో సదాచారము, తల్లిదండ్రులపై,

గురువులపై భక్తి శ్రద్ధలను గాఢముగా పెంపొందింపవలెనని ప్రబోధించనాడు.

"మాతృమాన్, పితృమాన్ ఆచార్యవాన్ పురుషోవేదః" అనునది శతపథ బ్రాహ్మణ వచనము. తల్లి, తండ్రి, ఆచార్యుడు ముప్పు రును ఉత్తమ శిక్షకులైనపుడు, మనుష్యుడు జ్ఞానవంతుడగును. మాతృదేవోభవ పితృదేవో భవ, ఆచార్య దేవోభవ, అను శాస్త్రోక్తులను అతి చరుత ప్రాయములోనే శిశువులకు గురుపవలయును.

మన యువతీయువకులకు బ్రహ్మచర్య వ్రతమును ధరింప చేయవలెననియును. వాని నియమముల పాలనము వారిలో ప్రగాఢముగా నెలకొల్పవలెనని తృతీయ సముల్లాసములో పేర్కొన్నాడు. "సత్యంవద, ధర్మంచర" అను ధర్మ లక్షణములను యువతీయువకులకు గురువర్యులు ఉపదే శింపవలయునని స్వాములవారు ప్రబోధిం చిరి. క్రమశిక్షణ, వినయ విధేయతలు, ఇంద్రియములను జయించుట, మనో విగ్రహము కల్గియుండుట, పెద్దలను గౌరవించుట, జ్ఞానసముపార్జన చేయుట, నిరంతరము సద్గ్రంథముల స్వధ్యాయము చేయుట యెల్ల వేళల యందు సత్యమును గ్రహించుట, అసత్యమును త్యజించుటకును సంసిద్ధులైయుండుట ఈ గుణములను బాలబాలికలలో యువతీయువకులలో అలవరింపచేయమని ఋషీశ్వరుడైన దయానందుడు ఉపదేశించినాడు.

స్వామిజీ భారతమాత దాస్య శృంఖములను త్రుంచుటకై స్వరాజ్య స్థాపన కొరకై పటిష్ఠమైన పునాదులు వేసిన ప్రథ వీరవర్యుడు. సమాజములో ప్రచలితమైన బాల్య వివాహము, వితంతు వివాహ నిరోధకము, అస్పృశ్యత, కులతత్వము అనుదోషములను నిర్మొహమాటముగా ఖండించి సమాజమును సుసంఘటితముగా చేయుటకై సర్వవిధముల ప్రయత్నిము చేసిన సంఘోద్ధారకుడు.

జన్మమునకు ప్రాముఖ్యమునీయక గుణ కర్మ స్వభావములకే ప్రాముఖ్య మయవలెనని దయానందుడు సుస్పష్టముగా వాక్రుచ్చినాడు. శమ దమాది గుణ సంపన్నుడు, వద్వాంసుడు సర్వమానవ కళ్యాణము చేయువాడు పురుషోత్తముడని, బ్రాహ్మణుడని పిలువనగును అని ఆయన సెలవిచ్చినాడు. శిష్టులను రక్షించి దుష్టులను శిక్షించి దేశమును శత్రుదాడి నుంచి రక్షించువాడు క్షత్రియుడని వ్యసాయము చేసి ప్రజలకందరికి అన్నాద సామాగ్రులను వితరణ చేయువాడు వైశ్యుడని, యేప్రతిభలేని వాడు సమాజములోని వారికి సేవచేయువాడు శూద్రుడని దయానందుడు ఉపదేశించనాడు, ఏ వృత్తి చేసినను సమాజు సేవ చేయువారందరు సమ్మాన నీయులేనని విశదపరచినాడు. సమాజములో నున్నవారందరికి వద్య నార్జించుటకు వేదశాస్త్రములు చదువుటకును సమానమైన అధికారము కలదని వేనోళ్ళ ఉద్ఘోషించిన ప్రవక్తలలో ప్రముఖులైనవారు స్వామి దయానందులవారు. ఆధునిక కాలములో స్త్రీలకు విద్యాధికారమునిచ్చన సాంఘిక విప్లవవీరుడు స్వాములవారు. వేద శాస్త్రముల ప్రమాణములను చూపి స్త్రీలకు విద్యాధికారము కలదని వారు నిరూపించినారు. భారత స్వాతంత్ర్య సంగ్రామ యోధులను నిర్మాణము చేసిన రాజ నీతిజ్ఞులలో అద్వితీయుడు అగ్రగణ్యుడు మహర్షి స్వామి దయానందులవారు. సత్యార్థ ప్రకాశము లోని అష్టమ సముల్లాసములో స్వాములవారు విధముగా లిఖించనారు.

స్వరాజ్య మహాత్మయమును గురించి దయానందుడు ఆనాడు విధముగా చెప్పి భారతీయులను స్వరాజ్యోన్ముఖులుగా చేసినాడు.

"ఎవరెంత చేసినను స్వదేశీ రాజ్యమే సర్వోపరి, ఉత్తమము. ఇక మతమతాంతరముల పట్టుదల లేనటువంటిదియు, తనవారు పరవారు, పక్షపాత రహితమైనదియు, ప్రజలను తల్లిదండ్రులవలె కృపతో, న్యాయముతో చూచునట్టి దయినను విదేశీరాజ్యము సంపూర్ణ సుఖదాయకము కానేరదు"

అఖండ బ్రహ్మచారి, సర్వమానవ హితైషి, అప్రతిమాన దైవభక్తుడు అనన్యసామాన్య సంఘ సంస్కర్త, గురుకుల విద్యావధాన ప్రసారవేత్త అయిన మహర్షి దయానందుల వారు ప్రాతర్వందనీయులు.

భారతీయ సంస్కృతి - సభ్యత ప్రశ్నోత్తరావళి

-క్షీరసాగరం శ్రీ లక్ష్మి (ఘూస్సీలక్ష్మి)

41. దేనిని 'శిక్ష' అందురు ?

జ. దేని మూలమున మానవులు విద్య మున్నగు శుభ గుణములు పొంది, అవిద్యాది దుర్గుణములను వదలి యెల్లప్పుడు నానందింపగలుగుదురో యదియే శిక్ష యనబడును.

42. విద్య అవిద్య యననేమి ?

జ. పదార్థ స్వరూపమును- లక్షణమును- యధావత్-ఉన్నదున్నట్లు తెలిసికొని, దాని వలన నుపకారమును పొంది, యితరుల కొరకును సర్వ సుఖములు దేని వలన సిద్ధింపజేయగలరో యది 'విద్య' యనబడును. పదార్థముల స్వరూపమును విపరతముగా తెలిసికొని తనకు ఇతరులకు నుపకారము చేయకుండుట 'అవిద్య' యనబడును.

43. విద్యను పొందుటకు, అవిద్యను నశింపజేసికొనుటకును మనుష్యులేమి చేయవలెను ?

జ. వర్ణముల నుచ్చరించుట మొదలు పదార్థ జ్ఞానము సంపాదించువరకు బ్రహ్మచర్యాది కర్మలు చేయవలయును.

44. బ్రహ్మచారి యన నెవరు ?

జ. జితేంద్రియుడై బ్రహ్మ-వేద విద్య, నేర్చుకొనుటకు ఆచార్య కులమున నుండి విద్యను గ్రహించుటకొరకు ప్రయత్నించువాడు బ్రహ్మచారి యనబడును.

45. ఆచార్యుడన నెవరు ?

జ. విద్యార్థులకు మిక్కిలి ప్రేమతో ధర్మయుక్తమగు వ్యవహారముతో బాటు విద్యను నేర్పుటకు తన మనోధనములతో ప్రయత్నించు వాడు ఆచార్యుడనబడును.

46. తమ సంతానమునకు తల్లిదండ్రులు, ఆచార్యుడు నెట్టి శిక్షణ నొసంగవలయును ?

జ. ధార్మికులు, విద్వాంసులనగు తల్లిదండ్రులకు జన్మించి, యట్టి యాచార్యుని వలన శిక్షణ పొందువాని జన్మము ధన్యమగును ఈ ముగ్గురి శిక్షణ వలననే మనుష్యుడుత్తముడగును. తల్లిదండ్రులు తమ సంతానమునకు, ఆచార్యుడు తన సిష్యులకు బాగుగ మాట్లాడుట నేర్పవలసియుందురు. వారికి తగిన మంచి వ్యవహారము, వస్త్రధారణము, మాతా పితరుల యెడ మర్యాదగా వర్తించుట, వారి యెదుట నిష్టము వచ్చినట్లు చరింపకుండుట మున్నగు విషయములు నేర్పుటకు నిత్యము ఉపదేశింప వలసి యుందురు. వయస్సున పెద్ద వారగు కొలది వారికి ఉత్తమోత్తమ విషయములను నేర్పుచుండవలయును. ఇట్లే బాల బాలికలకు ఐదు లేక ఎనిమిది ఏండ్ల వరకు తల్లిదండ్రులు, తదుపరి ఆచార్యుడు శిక్షణ నొసంగవలయును.

సరళార్థ యోగ దర్శనము

సమాధి పాదము

-పం. వేంకటేశ్వర శాస్త్రి

అథ యోగానుశాసనమ్ ॥1॥

ఇపుపడు యగశాస్త్ర మారభింపబడుచున్నది.

యోగశ్చిత్త వృత్తి నిరోధః ॥2॥

చిత్తవృత్తులను ఆపుటయే యోగము.

తదా ద్రష్టుః స్వరూపేఽవస్థానమ్ ॥3॥

చిత్తవృత్తులు నిరోధింపబడినపుడు జీవుడు తన స్వరూపము నందు స్థిరముగ నుండును.

వృత్తిసారూప్యమితరత్ర ॥4॥

ఇతర సమయాల్లో చిత్తవృత్తులతో సమానమైన రూపము కలుగును.

వృత్తయః పఞ్చతయ్యః క్లిష్టాఽక్లిష్టాః ॥5॥

వృత్తులు ఐదు. వానిలో ప్రతిదానికి క్లిష్టము, అక్లిష్టములను భేదములు గలవు.

ప్రమాణ విపర్యయ వికల్ప నిద్రా స్మృతయః ॥6॥

ప్రమాణములు, విపర్యయము వికల్పము, నిద్ర, స్మృతి యని వృత్తులు ఐదు.

ప్రత్యక్షానుమానాఽగమాః ప్రమాణాని ॥7॥

ప్రత్యక్షము, అనుమానము ఆగమము అని ప్రమాణములు మూడు విధములు.

విపర్యయో విథ్యాజ్ఞానమతద్రూప ప్రతిష్ఠమ్ ॥8॥

ఒక వస్తువులో మరియొక వస్తువు యొక్క మిథ్యాజ్ఞానము విపర్యయము.

శబ్దజ్ఞానానుపాతీ వస్తుశూన్యో వికల్పః ॥9॥

వస్తువు లేకపోయినను శబ్దజ్ఞానము కలిగినంత మాత్రముననే కలుగు చిత్తవృత్తి వికల్పమనబడును.

అభావప్రత్యయాలంబనా వృత్తిర్నిద్రా ॥10॥

అభావమె విషయముగాగల వృత్తి నిద్ర యనబడును.

అనుభూతవిషయాసంప్రమోషః స్మృతిః ॥11॥

పూర్వము దెలిసికొనిన విషయములను మరువకుండుటయే స్మృతియనబడును.

అభ్యాస వైరాగ్యాభ్యాం తన్ని రోధః ॥12॥

అభ్యాస వైరాగ్యములచే చిత్తవృత్తులు నిరోధింపబడును.

తత్ర స్థితౌ యత్నోఽభ్యాసః ॥13॥

చిత్తవృత్తుల నిరోధించుటకు చేయు యత్నము అభ్యాసమనబడును.

స తు దీర్ఘకాలనైరన్తర్యసత్కార సేవితో దృఢభూమిః ॥14॥

ఆ యభ్యాసము దీర్ఘకాలము వరకు నిరంతరము శ్రద్ధతో చేయుచుండిన దృఢమగును.

దృష్టానుశ్రవిక విషయవితృష్ణస్య వశీకారసంజ్ఞా వైరాగ్యమ్ ॥15॥

చూచిన, వినిన విషయములలో నెట్టి తృష్ణయు లేని వ్యక్తి యొక్క వైరాగ్యమే వశీకార వైరాగ్యమనబడును.

తత్పరం పురుషఖ్యాతేర్గుణవై తృష్ణ్యమ్ ॥16॥

ఆత్మజ్ఞానము కలుగటచే తృష్ణారహితమగుట పర వైరాగ్యము.

వితర్క విచారానన్దాస్మితానుగమాత్ సంప్రజ్ఞాతః ॥17॥

వితర్కము, విచారము, ఆనందము, అస్మిత సంబంధము వలన సంప్రజ్ఞాత సమాధి కలుగును.

విరామప్రత్యయావ్యస పూర్వః సంస్కార శేషోఽన్యః ॥18॥

పరవైరాగ్యము మరల మరల అభ్యాసము చేయుటవలన మానసక క్రియలన్నియు శాంతమై కేవలము సంస్కారము మాత్రమే మిగిలియుండును. అది అసంప్రజ్ఞాత నిర్బీజసమాధి యనబడును.

భవప్రత్యయో విదేహ ప్రకృతిలయానామ్ ॥19॥

విదేహులకు ప్రకృతిలయులకు భవప్రత్యయ సమాధి కలుగును.

శ్రద్ధా వీర్య స్మృతి సమాధి ప్రజ్ఞాపూర్వక ఇతరేషామ్ ॥20॥

విదేహులు, ప్రకృతిలయులకు భిన్నులగు కైవల్యము నభిలషించు యోగులకు శ్రద్ధ, వీర్యము, స్మ ృతి, సమాధి, ప్రజ్ఞ మున్నగు ఉపాయముల ద్వారా అసంప్రజ్ఞాతసమాధి కలుగును.

తీవ్ర సంవేగానామాసన్నః ॥21॥

తీవ్ర వైరాగ్యముచే నిరంతరము అభ్యాసము చేయువారికి శీఘ్రముగ సమాధి లభించును.

మృదు మధ్యాధి మాత్రాత్వాత్తతోఽపి విశేషః ॥22॥

తీవ్ర సంవేగపు మృదువు, మధ్యమము, అధి మాత్రములచే అతి త్వరగా సమాధి సిద్ధించగలదు.

ఈశ్వరప్రణిధానాద్వా ॥23॥

లేదా అనన్యచిత్తముచే భగవద్భక్తి సలుపుట వలన త్వరగా సమాధి లభింపగలదు.

క్లేశకర్మ విపాకాశయైరపారామృష్టః పురుష విశేష ఈశ్వరః ॥24॥

క్లేశ కర్మములు, కర్మఫలముల వాసనలతో సంబంధములేని విశిష్ట పురుషుడు ఈశ్వరుడనబడును.

తత్ర నిరతిశయం సర్వజ్ఞ బీజమ్ ॥25॥

పై సూత్రములో చెప్పబడిన ఈశ్వరునిలో నిత్య సర్వజ్ఞ జ్ఞానబీజము గలదు.

స పూర్వేషామపి గురుః కాలేనాఽనవచ్ఛేదాత్ ॥26॥

అనాది యగుట వలన ఆ యీశ్వరుడు వేదప్రకాశకులయిన పూర్వ ఋషులకును గురువు.

తస్య వాచకః ప్రణవః ॥27॥

ఆ యీశ్వరుని ముఖ్య నామము ప్రణవము-ఓంకారము.

తజ్జపస్తదర్థ భావనమ్ ॥28॥

ఓంకారమును జపించుచు, దాని అర్థమును చింతనమొనర్ప

వలయును.

తతః ప్రత్యక్చేతనాధిగమోఽప్యన్తరాయాభావశ్చ ॥29॥

ఆ ఈశ్వర ప్రణిధానము వలన ఆత్మసాక్షాత్కారము కలిగి విఘ్నములు తొలగిపోవును.

వ్యాధిస్త్యాన సంశయ ప్రమాదాలస్యాఽవిరతి భ్రాన్తి దర్శనాలబ్ధి భూమిక త్వానవస్థితత్వాని చిత్తవిక్షేపాస్తేఽన్తరాయాః ॥30॥

వ్యాధి, స్త్యానము (శరీరము బరువుగ నుండుట), సంశయము, ప్రమాదము, ఆలస్యము, అవిరతి (విషయ తృష్ణ), భ్రాంతి, సమాధి లభింపకుండుట, సమాధిలో చిత్తచాంచల్యము మొదలగునవి చిత్తమును చలింపజేయు విఘ్నములు.

దుఃఖ దౌర్మనస్యాఙ్గమేజయత్వ శ్వాస ప్రశ్వాసా విక్షేప సహభువః ॥31॥

దుఃఖము, దర్మనస్యము (మానసిక క్షోభ) అంగమేజయత్వము (అంగముల కంపనము) శ్వాసము, ప్రశ్వాసము ననునవి చిత్త విక్షేపములుండగా కలుగు విఘ్నములు.

తత్ప్రతిషేధార్థమేకతత్త్వాభ్యాసః ॥32॥

ఆ విఘ్నములను తొలగించుటకు ఒకే ఈశ్వర తత్త్వము నభ్యసింపవలెను.

మైత్రీ కరుణాముదితోపేక్షాణాం సుఖదుఃఖ పుణ్యాపుణ్య విషయాణాం భావనాతశ్చిత్త ప్రసాదనమ్ ॥33॥

సుఖులయెడ మిత్రభావము, దుఃఖితులపై కరుణ, పుణ్యాత్ముల యెడ సంతోషము పాపులపట్ల ఉపేక్ష కలిగియుండుటవలన చిత్తము ప్రసన్నమగును.

ప్రచ్ఛర్దన విధారణాభ్యాం వా ప్రాణస్య ॥34॥

లేదా ఉదరమందలి వాయువును రేచక కుంభకము లొనర్చుట వలన చిత్తము స్థిరమగును.

విషయవతీ వా ప్రవృత్తిరుత్పన్నా మనసః స్థితినిబంధనీ ॥35॥

లేక శబ్ద, స్పర్శ, రూప, రస, గంధాది విషయములు గల చిత్తవృత్తి జనించుటచేత మనస్సునకు నిలుకడ కలిగించునది యగును.

విశోకా వా జ్యోతిష్మతీ ॥36॥

లేక శోకరహిత ప్రకాశవంతమగు ప్రవృత్తి జనించ మనస్సునకు త్వ ము కలిగించును.

వీతరాగ విషయం వా చిత్తస్య ॥37॥

లేక రాగద్వేషాదులులేని మహాత్ముల దివ్యచరితముల ధ్యానించుటచే మనస్సు స్థిరమగును.

స్వప్న నిద్రా జ్ఞానాలమ్బనం వా ॥38॥

లేక స్వప్న సుషుప్త్యావస్థలలో నుండు జ్ఞానము నాధారముగా గొనుటచే మనస్సు స్థిరపడును.

యథాభిమతధ్యానాద్వా ॥39॥

ఇష్టమైన విషయమును ధ్యానించుటచేతను మనస్సు స్థిరమగును.

పరమాణు పరమ మహత్త్వాన్తోఽస్య వశీకారః ॥40॥

పైన వ్రాయబడిన ఉపాయములచే స్థిరమైన మనస్సు స్థూలాతిస్థూల, సూక్ష్మాతిసూక్ష్మ విషయములలో స్థిరముగ నుండగలదు.

క్షీణ వృత్తే రభిజాతస్యేవ మణేర్ గ్రహీతృ గ్రహణ గ్రాహ్యేషు తత్స్థ తదంజనతా సమాపత్తిః ॥41॥

రాజస, తామస వృత్తులను దూరముచేసి నిర్మలమగు మణివలె జ్ఞాత, జ్ఞాన, జ్ఞేయములలో ధ్యానముంచుటచే తన్మయమై తద్రూపమగుట సమాపత్తి యనబడును.

తత్ర శబ్దార్థ జ్ఞాన వికల్పైః సంకీర్ణా సవితర్కా సమావత్తిః ॥42॥

ఆ సమాపత్తులలో శబ్దము, అర్థము, జ్ఞానము అను భిన్నపదార్థములు నొకటిగా తోచుట సవితర్క సమాధి యనబడును.

స్మృతి పరిశుద్ధౌ స్వరూప శూన్యేవార్థ మాత్ర నిర్భాసా నిర్వితర్కా ॥43॥

స్మృతి శుద్ధమైనపుడు స్వరూపముచే రహితమగు అర్థమును మాత్రమే ప్రకాశింపజేయునది నిర్వితర్క సంప్రజ్ఞాత సమాధి యనబడును.

ఏత యైవ సవిచారా నిర్విచారా చ సూక్ష్మ విషయా వ్యాఖ్యాతా ॥44॥

ఈ సవితర్క నిర్వితర్క సమాపత్తుల ద్వారా సూక్ష్మ విషయాలంబన ముగా గల సవిచార, నిర్విచార సమాధులు కూడ వ్యాఖ్యానించబడి నట్లెంచవలెను.

సూక్ష్మ విషయత్వం చాలిఙ్గ పర్యవసానమ్ ॥45॥

మరియు సూక్ష్మ విషయత్వము ప్రకృతి పర్యంతముండును.

తా ఏవ సబీజః సమాధిః ॥46॥

పైన చెప్పబడిన నాలుగు సమాపత్తులే సబీజ సమాధి యనబడుచున్నవి.

నిర్విచార వైశారద్యేఽధ్యాత్మ ప్రసాదః ॥47॥

నిర్విచార సమాధియందు ప్రవీణుడైనపుడు బుద్ధిసత్త్వము నిర్మలమగును.

ఋతం భరా తత్ర ప్రజ్ఞా ॥48॥

నిర్విచార సమాధియందు ప్రావీణ్యత కలిగినపుడు ఉత్పన్నమగు ప్రజ్ఞయే ఋతంభర (సత్యమును ధారణమొనర్చు) ప్రజ్ఞ యనబడును.

శ్రుతాను మాన ప్రజ్ఞాభ్యామన్య విషయా విశేషార్థత్వాత్ ॥49॥

విశేష విషయము గలదగుటచే ఋతంభర ప్రజ్ఞ అగమ, అనుమాన ప్రజ్ఞలకంటె భిన్నమైనది.

తజ్జః సంస్కారోఽన్య సంస్కార ప్రతబంధీ ॥50॥

ఋతంభర ప్రజ్ఞచే ఉత్పన్నమైన సంస్కారములకు ప్రతిబంధక మగును.

తస్యాపి నిరోధే సర్వనిరోధాన్ని ర్బీజః సమాధిః ॥51॥

ఆ ఋతంభర ప్రజ్ఞచే ఉత్పన్నమైన సంస్కారము కూడ నిరోధింప బడుటచే అన్ని సంస్కారములు నిరోధింపబడుటవలన నిర్బీజ సమాధియగును.

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month
आर्य जीवन 18-03-2019 Registered-Reg. No. HD/783/2018-20 RNI No. 52990/93

ఆర్య జీవన్
హిందీ - తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక
Editor : **Vithal Rao Arya**, M.Sc. LL.B., Sahityaratna
Arya Prathinidhi Sabha AP-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-500095
Phone No. : 040-24753827, 66758707, Fax : 040-24557946
Annual Subscription Rs. 250/- సంపాదకులు - **విఠల్ రావు**, మంత్రి సభ

To,

आर्य जीवन पाक्षिक पत्र का स्वामित्व सम्बन्धी विवरण

फार्म ४ नियम ८

(प्रेस और रजिस्ट्रेसन एक्ट)

प्रकाशन का स्थान	:	आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना महर्षि दयानन्दमार्ग, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद
प्रकाशन का समय	:	प्रति मास ३ एवं १८ तारीख को
मुद्रक का नाम	:	आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना घर नं. ४-२-१५. महर्षि दयानन्द मार्ग सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद
सम्पादक	:	विठ्ठलराव
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
जो व्यक्ति पत्र के स्वामी है	:	आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना
भागीदार हिस्सेदार	:	आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना

मैं विठ्ठलवार सुपुत्र गोविन्द राव इस पत्र के द्वारा घोषणा करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण जहाँ तक मेरा ज्ञान हैं वास्तव में सत्य है ।

विठ्ठल राव, मंत्री

आर्य प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानन्दमार्ग, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद, आ.प्र.-तेलंगाना

మూడవ యోగసాధన శిబిరము

స్వస్తిశ్రీ వికారి నామ సంవత్సర చైత్ర కృష్ణ తృతీయ సోమవారము నుండి ఆదివారము వరకు తేది 22-04-2019 నుండి 28-04-2019 వరకు ఏడు దినములు

ఈ శిబిరంలో పాల్గొను సాధకుల సంఖ్య పరిమితము వారికి ఎనిమిది దినములు భోజనము, ఆవాస వసతులు కల్పించబడును. కావున 18 సంవత్సరాలు పైబడిన స్త్రీ పురుషులు వెంటనే 650/- రూపాయల్లు చెల్లించి స్వీకృతి పొందగలరు.

స్వీకృతి పొందిన సాధకులు ఆదివారము అనగా 21-4-2019 నాడు సాయంత్రము 4-00 గంటల వరకు శిబిర స్థలమునకు చేరుకోవలెను.

శిబిర స్థలము : **యస్.పి.ఆర్. స్కూల్**, గ్రా॥ లింగాపూర్, కామారెడ్డి.

సూచన : బస్టాండ్ నుండి 4 కి॥ మీ॥ నిజాంసాగర్ మార్గములో కలదు.

నిర్వాహకులు : వేద ధర్మ ప్రచార సమితి, కామారెడ్డి

గౌరవ అధ్యక్షులు :	అధ్యక్షులు :	కోశాధికారి :
యం.ధర్మవీర్ గారు	**కంకణాల కిషన్, కామారెడ్డి**	**కొమిరిశెట్టి శంకరయ్య**
9000056018	9440033446, 9000733446	9392344855

...पृ. ८ का शेष

किसी प्रतिनिधि सभा ने उसका सुधार करने के लिए कोई समिति बनाई अथवा और कुछ किया । बिलकुल नहीं । शोक ! वालब्रह्मचारी का प्रयत्न व्यर्थ जा रहा है । उनके सिद्धान्त का नाश हो रहा है और आर्य समाज सङ्गठन के मद में चूर होकर अपने सिद्धान्त के नाश पर स्वयं आनन्द मना रहा है । लक्ष्मीपूजा के रोग ने आर्य पुरुषों के मस्तिष्ख-बल को ऐसा घटा दिया है कि उन्हें अपनी अन्तिम उद्देश्य वैदिक धर्म-प्रचार का ध्यान तक न रहा । स्वार्थ और कीर्ति की इच्छा ने मनुष्य के मस्तक को ऐसा औंधा कर दिया है कि वैदिक धर्म-प्रचारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के वाक्यों का अपमान आर्य समाज के प्लेटफॉर्म-मञ्च पर किया जाता है और आर्य समाज के सभासद् जातिमद में चूर होकर, जिन पुराणों की अश्लील शिक्षा की दूर करने के लिए स्वामी दयानन्द को इतना परिश्रम करना पड़ा, उसी को पवित्र शिक्षा के नाम से फिर चलाने का प्रयत्न किया जा रहा है । महर्षि के जो सिष्य आर्य सिद्धान्तों के रक्षक समझे जाते थे, अब आर्य सिद्धान्तों के भक्षक बनते जाते हैं ।

पाठकगण ! यद्यपि ट्रैक्ट का विषय अपने शीर्षक से बाहर चला गया है, परन्तु आवश्यक होने के कारण इसका लिखना आवश्यक प्रतीत हुआ ।

आर्य पुरुषो ! अब भी चेतो, अन्यथा बहुत हानि होगी और धर्म का नाश हो जाने पर सङ्गठन से कुछ लाभ न होगा ।

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR
Editor : Vithal Rao Arya ● Email : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691
సంపాదకులు : శ్రీ విఠల్‌రావు మంత్రి సభ, ఆర్యప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్‌బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph : 040-24753827, Email : acharyavithal@gmail.com
संपादक : श्री विठ्ठलराव मंत्री सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रिन्टर्स में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया ।
प्रकाशकः आर्य प्रतिनिधि सभा आं.प्र.-तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद तेलंगाना-[illegible]